झाँसी की रानी

(ऐतिहासिक-प्रबन्ध-काव्य)

आनन्द मिश्र

★

साधना-प्रकाशन

जयेन्द्रगंज, ग्वालियर, (म० प्र०)

त्वदीयं वस्तु गोविन्दम्
तुभ्यमेव समर्पयेत्

है कथा आधार, व्यंजित युग-व्यथा का सार,
प्राण की संकीर्णता का कर सकूँ विस्तार,
कर्म का प्रासाद जिसकी नेह की दीवार,
रूप युग का, मैं सजा लाया नया-संसार,

एक गाथा, जो कि जीवन-सत्य का अनुवाद,
एक गाथा, विश्व के इतिहास का अपवाद,

मूर्त्ति-प्रतिरूप ही थी कुपित कराली का या—
लाई अवतार छटा भूपर भवानी की,
सूरज-सा तेज, सुधाकर-सा सनेह-शील,
आग और पानी का मिलाप मूर्ति रानी की,

यह पैशाचिक-वृत्ति धरा का कबतक भार बनेगी ?
कबतक जड़ता और चेतना में यह रार ठनेगी ?
मैं आश्वस्त, एक दिन वह भी धरती पर आयेगा,
धर्म जयी होगा, अधर्म का नाम न रह जायेगा,

प्राणों में उत्साह अधर पर मस्ती भरे तराने,
'जननी जनम दियौ है हमकों जई दिना के लाने,'

अनुक्रमणिका

आशीर्वादम्

महाकविः पं. सूर्यकान्तः त्रिपाठो 'निराला'

दृष्टवान् प्रबन्धकाव्यानि सार्थकत्वं गतानि 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू' दृढ़ीकुर्वन्स्थितानि च । यदहभिदानीम् विश्व-धारण सूत्रधारान अनुगन्तुमाग्लभाषा प्रति सानुरागोभवामि पटुत्वेन् न तदा हिन्दी संचालयितु सक्षमोऽस्मिमन्ये । उत्तरितु-तारयितु मपि अनुभवामि सिद्धो भविष्यति कवि. । नवोदितोऽपि वाचालोऽय सचालयितु हिन्दीकाव्यभाषासहित्य बहुगुणो भविष्यति । पूर्ण यौवनेनाह पठिष्यामि काव्यान्यस्य यथातिरेकात प्रविशामि परलोकत्वं, परन्तु आधुनिकाः सर्वे सुपठितजनाः तरिष्यन्ति अनेनोडुपेन सागरम् । दृढीकृत्वा शक्ति निचयं भेदादपगता । इति ।

प्रयाग
४-६-५७

सूर्यकान्तः

भूमिका

श्री आनन्द मिश्र का, झाँसीकीरानी लक्ष्मीबाई पर, यह काव्य सभी रसों से पूर्ण है। शब्द-शब्द से कविता झलकती है। प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़े है। जैसे—

अंधकार का कवच भेदकर किरणों के शर छूटे,
धो देने कालिमा जगत की पुज प्रभा के टूटे,
(पृ० १४)

संध्या ढली, यामिनी आई, पहन कालिमा का पट झीना,
बाँधे हुए प्रशस्त भाल पर इन्द्रजाल सा चन्द्र-नगीना,
(पृ० ७०)

ये उदाहरण मैंने चुन कर नही रक्खे हैं। इनसे भी बढ़-कर, और प्रचुर मात्रा में अनेक फूले-फले हैं।

काव्य की गाथा के सम्बन्ध में श्री आनन्द मिश्र ने बहुत ही सुन्दर और सार्थक शब्दों में कहा है—

एक गाथा जो कि जीवन-सत्य का अनुवाद,
एक गाथा विश्व के इतिहास का अपवाद

कोई सदेह नही कि लक्ष्मीबाई का इतिहास जीवन की पवित्रता, मानसिक सतुलन, त्याग और वीरता, राजनीतिज्ञता और सहृदयता, इत्यादि मे अनुपम और अद्वितीय है।

लक्ष्मीबाई के उन महान गुणों से व्यक्ति और समाज आज भी प्रेरणा और स्फूर्ति पाता है और पा सकता है। कवि के ये शब्द कितने ओज के साथ इस बात को व्यक्त करते है—

मक्त मुकुलों की मनोरम वीथियों के बीच,
देश-गौरव की सुरभि से वायुमडल सीच,
कर रही जन-धमनियों में रक्त का सचार,
अनय को नय की चुनौती यह खडी साकार,
(पृ० १२६)

लक्ष्मीबाई पर यह काव्य मुझे वहुत रूचा। मुझे विश्वास है कि पाठकों को भी रुचेगा।

ऐसे सुन्दर और प्रेरक काव्य की रचना के लिए श्री आनंद मिश्र को मेरी हार्दिक बधाई।

झाँसी
७-६-१९५७

—बृन्दावनलाल वर्मा

निवेदन

साधु सराहे साधुता, जती जोखिता जान,
रहिमन साँचे सूर कौ, बैरी करत बखान।

बहुत दिन हुए किसी मित्र के मुख से महाकवि रहीम का यह दोहा सुना था, अध्ययन-काल मे वीरांगना-लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध मे जनरल ह्यू रोज का इतिहास-प्रसिद्ध मत पढने मिला– 'She was best and brarvest of all,' और पढ़कर मुझे भावविभोर होना पड़ा। रानी की महान जीवन-गाथा इतिहास के पन्नों तक ही सीमित नही, वरन् शायद ही कोई ऐसा भारतीय होगा, जो रानी के नाम पर श्रद्धा से सिर न झुका ले। रानी का शौर्य एवं बलिदान विश्व-इतिहास की अनूठी घटना है, साथ ही भारत के हृदय-हृदय की थाती भी। इस सर्वव्यापी महान् जीवन-चरित्र को यदि मेरे अकिचन-कवि ने अपने प्रबन्ध का विषय चुना है तो यह कोई आश्चर्य की बात नही, ऐसा होना स्वाभाविक ही था। हाँ, इसे प्रारम्भ करने से पूर्व एक आश्चर्य मुझे अवश्य हुआ, कि वीरांगना लक्ष्मीबाई जैसे विलक्षण-व्यक्तित्व के प्रति माँ-भारती के किसी

कोई संदेह नही कि लक्ष्मीबाई का इतिहास जीवन की पवित्रता, मानसिक संतुलन, त्याग और वीरता, राजनीतिज्ञता और सहृदयता, इत्यादि मे अनुपम और अद्वितीय है ।

लक्ष्मीबाई के उन महान गुणो से व्यक्ति और समाज आज भी प्रेरणा और स्फूर्ति पाता है और पा सकता है । कवि के ये शब्द कितने ओज के साथ इस बात को व्यक्त करते है—

मत्त मुकुलों की मनोरम वीथियो के बीच,
देश-गौरव की सुरभि से वायुमंडल सीच,
कर रही जन-धमनियों में रक्त का संचार,
अनय को नय की चुनौती यह खडी साकार,
(पृ० १२६)

लक्ष्मीबाई पर यह काव्य मुझे बहुत रूचा । मुझे विश्वास है कि पाठकों को भी रुचेगा ।

ऐसे सुन्दर और प्रेरक काव्य की रचना के लिए श्री आनंद मिश्र को मेरी हार्दिक बधाई ।

झाँसी
७-६-१९५७

—बृन्दावनलाल वर्मा

निवेदन

साधु सराहे साधुता, जती जोखिता जान,
रहिमन साँचे सूर कौ, बैरी करत बखान।

बहुत दिन हुए किसी मित्र के मुख से महाकवि रहीम का यह दोहा सुना था, अध्ययन-काल में वीरागना-लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध मे जनरल ह्यू रोज का इतिहास-प्रसिद्ध मत पढने मिला– 'She was best and brarvest of all,' और पढकर मुझे भावविभोर होना पड़ा। रानी की महान जीवन-गाथा इतिहास के पन्नों तक ही सीमित नहीं, वरन् शायद ही कोई ऐसा भारतीय होगा, जो रानी के नाम पर श्रद्धा से सिर न झुका ले। रानी का शौर्य एव बलिदान विश्व-इतिहास की अनूठी घटना है, साथ ही भारत के हृदय-हृदय की थाती भी। इस सर्वव्यापी महान् जीवन-चरित्र को यदि मेरे अकिचन-कवि ने अपने प्रबन्ध का विषय चुना है तो यह कोई आश्चर्य की बात नही, ऐसा होना स्वाभाविक ही था। हाँ, इसे प्रारम्भ करने से पूर्व एक आश्चर्य मुझे अवश्य हुआ, कि वीरागना लक्ष्मीबाई जैसे विलक्षण-व्यक्तित्व के प्रति माँ-भारती के किसी

वन्द्-पुत्र की श्रद्धा अब तक मुखर क्यो न हुई ? प्रबन्धकाव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त इस पवित्र जीवन-गाथा पर किसी महाकाव्य की रचना न होना सचमुच आश्चर्य की बात है। निश्चय ही भारत ऐसे युग-प्रवर्तक व्यक्तित्वों का भडार रहा है, और इस सत्य को भी झुठलाया नही जा सकता कि साहित्य सदा ऐसी आदर्श-गाथाओ से, जीवन-चरित्रो से प्रभावित होता रहा है, समृद्ध होता रहा है। विश्व-साहित्य के गौरव-ग्रन्थ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। रानी का व्यक्तित्व भी इन युग-प्रवर्तक व्यक्तिवों मे से एक है, ऐसा मै मानता हूँ। और आश्वस्त भी हू कि प्रत्येक सहृदय इसे अस्वीकार न कर सकेगा। मै जानता हू कि पद्य के क्षेत्र मे रानो की जीवन-गाथा पर लिखी गई फुटकर रचनाएँ खोजने पर बड़ी सख्या में प्राप्त हो सकती है, कितु जिस ललक के साथ इस विषय पर लेखनी उठाई जाना चाहिये थी, उसका प्रयत्न अबतक नही दिखाई दिया। इस अभाव-पूर्ति की दिशा मे मेरा यह बाल-प्रयत्न इस विश्वास के साथ प्रस्तुत हो रहा है, कि निकट भविष्य मे ही लक्ष्मीबाई, तात्त्या-टोपे अथवा भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम पर किसी सफल-ग्रन्थ के दर्शन हो सकेगे तथा मेरा विनम्र दिशा-दर्शन कृतार्थ हो सकेगा।

'साधना' के नाम से मेरा पहला काव्य-सग्रह सन् १९५२ में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह की २६ रचनाएँ मेरी उस काल की प्रतिनिधि रचनाएँ है। शीघ्रता मे इस संग्रह का

पाया, काफी अशुद्धियों के साथ संग्रह पाठकों के हाथों तक पहुँचा । 'गेट अप' भी कुछ साधारण-सा, लेकिन इन सब कमियो के होते हुए भी इस पुस्तक का अपेक्षाकृत अधिक स्वागत हुआ । विज्ञ-पाठको ने इसे जिस उदारता और स्नेह के साथ अपनाया, उसमें जिज्ञासा अथवा साहित्यिक-परख से अधिक उनका मुझ पर असीम-स्नेह ही प्रमुख था, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ । मध्यभारत शासन-कला परिषद् द्वारा इस पुस्तक पर मुझे पुरस्कार भी प्राप्त हुआ, और उस प्रारम्भिक-अवस्था मे इस पुरस्कार ने मुझे थोड़ा प्रोत्साहन भी अवश्य दिया, यह मैं स्वीकार करता हूँ । पाठको तथा श्रोताओं की प्रेरणा ही का परिणाम था, मै एक व्यसनी-लेखक की भांति निरन्तर लिखता रहा, आज जब मुडकर देखता हूं तो अपनी त्वरा पर मुझे स्वय आश्चर्य-चकित होना पड़ता है ।

'साधना' के बाद का १।। वर्ष भी फुटकर कविताओं और गीतों ही का रचना-काल रहा । लेकिन जब-जब मैंने इन रचनाओं पर घूमकर दृष्टि डाली है, मुझे अपनी यह धारणा सदा बलवती प्रतीत हुई कि मुक्तक के क्षेत्र की अपेक्षा मेरी लेखनी प्रबन्ध-काव्य के क्षेत्र में अधिक स्वस्थ-साहित्य का प्रणयन कर सकेगी । कारण कि, अपनी अनेक फुटकर रचनाओ मे भी मुझे प्रबन्ध-काव्य के आवश्यक-तत्वों के प्रचुर-मात्रा मे दर्शन हुए । 'दुनियां की कहानी,' 'वर्तमान से भविष्य की ओर' 'नारी,' 'विप्लव' 'दृश्य, 'सत्य, माया' आदि प्रबन्धात्मक रचनाएँ मेरे उक्त कथन को प्रमाणित कर सकेंगी ।

और इसके पश्चात् मैने अपनी प्रतिभा को प्रबन्ध की दिशा मे केन्द्रित करने का प्रयास किया। 'चन्देरी का जौहर' इस नई दिशा मे मेरा प्रथम-चरण था। अपनी इस रचना से मै इसलिए संतुष्ट न हो सका कि जो व्यापक-रूपरेखा इसे लिखने के पूर्व मेरे मस्तिष्क मे थी मेरी लेखनी उसे अविकल रूप से कागज पर उतार देने मे असमर्थ सिद्ध हुई, हा, सतोष इस बात का है कि साहित्यक मूल्य के अतिरिक्त इस रचना के द्वारा मै मध्य-प्रदेश के इतिहास का एक भूला-बिसरा हुआ गौरवशाली-पृष्ठ प्रकाश मे ला सका। नही जानता कि इतिहास के अधिकारी-विद्वान मेरे इस परिश्रम को किस रूप मे स्वीकार करेगे ? अथवा ठुकरा ही देगे, उस भावी-भय से मै आक्रान्त नहीं हूँ, और न इस सम्भावना से मेरे आत्म-विश्वास में ही कोई कमी आई है। 'चन्देरी का जौहर' के बाद 'झाँसी की रानी' का प्रणयन मै अपने जीवन की क्रान्तिकारी घटना कहूँ तो अत्युक्ति न होगी। निश्चय ही लिखने के पश्चात् मै स्वय इसमें बहुत से अभाव देखता हू, कुछ परिवारिक उलझनो के कारण, कुछ समयाभाव के कारण, तथा कुछ इस लम्बी-चढ़ाई की थकान के कारण मुझे बड़ी शीघ्रता मे इसे पूरा करना पड़ा है। किन्तु इसकी रचना के पश्चात् मै अपने-आप को यह विश्वास दिलाने के योग्य पाता हूं कि जल्दी ही एक नए-प्रबन्ध के द्वारा मै अपनी पिछली त्रुटियो से मुक्ति पा सकूगा। वैसे मै आलोचना मे छिन्द्रवेषी-प्रवृत्ति का विरोधी हूँ, और स्वस्थ-समालोचना की कसौटी पर यह रचना खरी उतरेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत कृति ७ सर्गो मे समाप्त हुई है। यह इंगित तो कर ही चुका हूं कि कथानक सफल-महाकाव्य के लिए पूर्णतः उपयुक्त है। रस-परिपारक, चरित्र-चित्रण, वर्णनों की व्यापकता, उद्देश्य, भाव-गाम्भीर्य आदि मेरी परख की चीजे नही है। सफलता-असफलता का निर्णय अधिकारी-आलोचकों तथा विज्ञ-पाठकों का काम है। कहना चाहते हुए भी मै इस विषय में मौन रहूँगा।

राजा गगाधर राव के चरित्र-चित्रण में मैने कुछ स्वतंत्रता से काम लिया है, हाँ, औचित्य की सीमा न लॉघते हुए।

मुंझे इस बात की प्रसन्नता है कि अध्ययन-मनन के माध्यम से रानी का चरित्र मै जितना समझ सका हूँ, उतना ठीक-ठीक उतारने मे सफल हो गया हूँ।

१८५७ के प्रथम– भारतीय-स्वतन्त्रता-संग्राम का उतना ही भाग मै उपयोग में ला सका हूँ, जितना रानी से सम्बद्ध था, लेकिन इसे पढकर आप उस जन-क्राति का स्वरूप बहुत कुछ समझ सकेगे।

आदरणीय महाकवि पं० सूर्यकांत जी त्रिपाठी 'निराला' ने अपने आशीर्वाद के द्वारा मुझे कृतार्थ किया है। उन्हें किन शब्दों मे धन्यवाद दू ? उपन्यास-सम्राट बाबू वृन्दावनलाल वर्मा का भूमिका के लिए आभारी हूँ, इन विद्वज्जनों के प्रति कृतज्ञता

प्रकट करता हूँ । निराला जी के आशीर्वाद के हिन्दी-अनुवाद के लिए मै श्री रवीन्द्र कुलश्रेष्ठ एव कुमारी उर्मिला कुलश्रेष्ठ को भी धन्यवाद देता हूँ । पुस्तक के त्वरित-मुद्रण के लिए अशोक प्रेस के व्यवस्थापक श्री राधेश्याम विजयवर्गीय भी धन्यवाद के पात्र है। अधिक क्या लिखूँ ? अन्त मे अभावों के लिए क्षमा याचना करता हुआ, मैं विदा होता हूँ ।

ग्वालियर
१० मई १९५७

इत्यलम जिज्ञेसु !
आनन्दमिश्र

ऐतिहासिक उद्धरण

'रानी का शौर्य विवशता की परिस्थितियो मे उत्पन्न नही हुआ था, रानी स्वराज्य के लिये लडी ।" —बृन्दावनलाल वर्मा.

"ऐसी वीर रमणी मैने कभी किसी देश मे नही देखी" ।

—जनरल ह्यू रोज

"If the Scindia joins the mutiny, I shall have to pack-off to-morrow" —लार्ड केनिंग

"कई दृष्टियों मे मुसलमानी शासन हमारे शासन से कही अच्छा था ·· हमारी नीति उत्साह-शून्य, स्वार्थपूर्ण एवम् हृदय-हीन रही है अधिकार का इस्पाती-पजा एक ओर, और एकाधिपत्य तथा निशेध दूसरी ओर······ —कर्नल मौलिसन

"A lady bearing a high charactor and much respected by every-one at Jhansi. —के.

"नाही मी झाशी नाही देणार, ज्याची कुणाची छाती असेल त्याने पहावाच प्रयत्न करून" । —महारानी लक्ष्मीबाई

"अशा तऱ्हेची ही देवतातुल्य स्त्री कन्या-निराजी म्हणून लाभण्याचे भाग्य क्वचित एकाद्याच राष्ट्राचा वांट्याला आले असेल, हे भाग्य इग्लडलाही अद्याय वाटले नाही, इटलीचा क्रातीत उदात्त-ध्येयेनी अत्युच्च कोटीतील पराक्रम याची अनेक उदाहरणे पाहण्यांस सांपलता, परतु या उज्वल कालात इटली एकाही लक्ष्मीला जन्म देऊ शकली नाही" ।

— सावरकर

"No less then five-thousand persons are stated to have perished at Jhansi, or to have been cut-down by the flying-camp" **Martin.**

It was not alone the sepoy Who rose in revolt—It was not by any means a merely military mutiny. It was a combination of military grievances, national hatred, and religious fanaticism against the english occupation of India. **Macarthy**

It became the rebellion of a whole people.

—Charle's ball

The lubricating mixture used in preparing the cartridges was actually composed of the objectionable Ingredents. cow's fat and tard and that Incredible disregard of the soldiers relegious prejudices was displayed in the manufacture of these cartridges **—Lord Raberts**

We must use all the power and all the authority in our hand .until India becomes the bul-work of christianity in the east. **—Rev. Kennedy.**

"प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू वीरांगना लक्ष्मीबाई की समाधि पर श्रद्धाँजलि अर्पित करते हुऐ"

प्रथम-सर्ग --------

शारदे ! आओ, विराजो लेखनी पर आज,
मै अकिचन, मूढ़, अनुभव-हीन, रखलो लाज,
भावना निर्बोध, भाषा पर नही अधिकार,
अपरिचित पिगल, लजीली-कल्पना सुकुमार,
आज वह गाने चले हैं क्षुद्र मेरे प्राण,
सुन जिसे जलधार बन पिघले-बहे पाषाण,
हृदय-हृदय असीम श्रद्धानत प्रणत अविराम,
एक गाथा, रवि-किरण सी तेजवंत ललाम,
एक गाथा, शौर्य का, उत्सर्ग का जो चित्र,
त्याग की गति पर लगा मानौ विराम विचित्र,
एक गाथा जोकि जीवन-सत्य का अनुवाद,
एक गाथा विश्व के इतिहास का अपवाद,
मै लिखूँ ? अक्षम ! दिया तुमने मुझे आदेश.
किंतु कैसे ? प्रश्न का है प्रश्न सम्मुख शेष,
सहज विस्मित, प्रश्न का उत्तर न मेरे पास,
एक तुम उत्तर, मुझे तुम पर घना विश्वास,
तुम वरद-कर दो न सुलझे कौनसा वह भाव ?
तुम करो इंगित न सुलझे कौनसा वह भाव ?

मॉ ! वरद-करदो, सजाऊँ भारती का साज,
शारदे ! आओ, विराजो लेखनी पर आज,
भावना के सिन्धु हिल्लोलित, मचलते ज्वार,
शब्द की पुलके-वहे निर्बाध सौ-सौ धार,
'सत्य' पर 'सुन्दर', कलामय कल्पना के जाल,
मै जड़ू स्वर्णाभरण मे राशि-राशि प्रवाल,
मैं लिखूँ, हर पक्ति मेरी वज्र का हो लेख,
खीच पाऊँ हर हृदय पर ओज की वह रेख,
धुल न पाये, युग थके, शत-कल्प जाएँ हार,
विश्व-तन में चेतना के रक्त का सचार,
है कथा आधार, व्यजित युग-व्यथा का सार,
प्राण की सकीर्णता का कर सकू विस्तार,
कर्म का प्रासाद जिसकी नेह की दीवार,
रूप युग का, मै सजा लाया नया-ससार,
विश्व-प्राण-प्रबोध मेरी भावना सुकुमार,
युग-विषमता पर करूंगा मैं अचूक-प्रहार
मैं समय के भाग्य का निर्णय करूगा आज,
बिजलियो की शक्ति पर सशय करूँगा आज,
दे अभय-वर, मैं धरा को स्वर्ग का दू साज,
शारदे ! आओ, विराजो लेखनी पर आज ।

दिवस भर श्रम कर चला सूरज प्रतीची ओर,
साध्य-नभ, धरिणी, दिशाये लालिमा में बोर,
दिवस का अवसान, रवि ओझल हुआ सा दीन,
कौन आतप के ज्वलिन-कण रोज लेता बीन ?
अस्तमित रवि, रिक्त-पद पर सोम का अभिषेक,
रात-दिन, दिन-रात, विधना का अमिट यह लेख,
बीज, अंकुर, वृक्ष पल्लव-खचित, फिर वह बीज,
एक क्रम अक्षुण्ण जिसकी परिधि मे हर चीज,
प्रगति-परिवर्तन सनातन, अटल विश्व-विधान,
चक्र चलता, ढल रहे नियमित निशा-दिनमान,
सोम का अभिषेक, बिखरे नखत-हीरक-हार,
लालिमा घटने लगी, बढने लगा तम-भार,
लौट आए श्रात-खग उद्विग्न गृह की ओर,
मूक धरती, मूक नभ, नीरव जगत के छोर,
मै अचल, निस्तब्ध बैठा देखता आकाश,
मै न एकाकी, कि एक समाधि मेरे पास,
ईंट-चूने की बनी निर्जीव यह चौकोर,
किंतु इस पर चेतना बलिहार, आत्म-विभोर,
यह समाधि अपौरुषेय-सुधर्म-कर्म-प्रतीक,
अनुकरण करती विजय जिसका बनी यह लीक,

शौर्य की, अमरत्व की अभिव्यंजना साकार,
शुद्ध-जीवन-तत्व की अभिव्यंजना साकार,
एक नारी के अमर-बलिदान का यह चिन्ह,
असत् से सत् के सतत-सम्मान का यह चिन्ह,
मृत्यु पर जीवन-विजय का यह सनातन-घोष,
जो न होता रिक्त है, वह प्रेरणा का कोष,
ले रही है एक अविस्मरणीय-गाथा साँस,
तरुण-लोहू ने लिखा पाषाण पर इतिहास,
मत्त-मुकुलों की मनोरम-वीथियों के बीच,
देश-गौरव की सुरभि से वायु-मण्डल सींच,
कर रही जन-धमनियो में रक्त का संचार,
अनय को नय की चुनौती यह खडी साकार।

मोम धर दीप, फूल तारक, सजाये थाल,
मुग्ध-यामिनी है रोज आरती उतारती।
शीतल फुहार धार बरखा बहाती मंजु,
झूम-झूम घूम पग-कमल पखारती।
देती है परिक्रमा दिशाएँ अभिमान भरी,
मधुऋतु फूल-फल कानन सँवारती।
मन्दिर है, पुण्य तीर्थ-राज महा-वन्दनीय,
वाणी के सुघर-पुष्प लाई आज भारती।

सहज कौतूहल हृदय में, मै शिलावत् मौन,
आगया है रिक्त-प्राणों में अचानक कौन ?
दृग मुँदे है, खोलता है कौन उर के द्वार ?
कौन छूना है विपची के अचेतन-तार ?
नीद सी आने लगी है, मैं रहा हूँ झूम,
वन्द-नयनों मे रहे यह चित्र कैसे घूम ?
स्वप्न का समार भी कैमा अजब ससार,
सत्य को मिलता कि मनभाया जहाँ आकार,
जो विगत ओझल हुआ, वह दृश्य-मा साकार,
देख लेता मन सभी कुछ मुग्ध बारम्बार,
नील-नभ ऊपर, धरा नीचे बनी आधार,
गोद में शिशु-सा बसा है नगर-वृहदाकार,
मोद-मग्ना आज नगरी का नया शृङ्गार,
देखले हम भी चलो, यह कौनसा त्यौहार ?
टोलियों में झूमते जन, हो रही क्या बात ?
आज परिणय है किसी का, आरही बारात,
नव-वधू झाँसी कि चारो ओर है आलोक,
किस गुहा मे जा छिपा है आज इसका शोक ?
रात है, लेकिन पराजित लग रही है रात,
लक्ष-लक्ष प्रदीप जलते हँस रहे जो साथ,

व्योम के दीपक धरा के दीपको मे क्षीण
प्राण की ज्वाला सुहागिन-मृत्ति पर आसीन,
द्वार-द्वार सजे हुए है हरित बन्दनवार,
फुल्ल जन-समुदाय, उमडा सिन्धु-पारावार,
हर हृदय मे देखता हूं मै नया उल्लास,
हर अधर मे खेलता है पाटलो का हास,
बह चले उत्साह के जैसे अजस्त्र-प्रपात,
आज है परिणय किसी का, आरही बारात,
ढोल, ढफ, ताशे, नगाडो का समन्वित-नाद,
दे रहा है आज नगरी को नया उन्माद,
झाँझ झम-झम-झम झमकती बज रही जी खोल,
झूलता भूगोल जैसे मुग्ध स्वर-हिन्दोल,
धाक-धिन तबले, पखावज दे रही रस-धार,
क्वणित ककण, पायलो की मदभरी झनकार,
पग थिरकते, अग-चचल कापते मद-मस्त,
शक्ति भर है सब कला की व्यजना में व्यस्त,
वीण, मुरज, मृदंग, तुरही, बाँसुरी, करताल,
दे रहे सब नृत्य की उत्ताल-गति पर ताल,
उर्ध्व-सौधो पर मधुर शहनाईयो की धूम,
सुन जिसे पवमान तक बहता नशे में झूम,
मोदमय किलकारियों का यह अलौकिक-रोर,
सुन जिसे जड-पाहनों में उठी पुलक मरोर,
प्राण में भरते सिहर है गीत के मधु-बोल,
एक से हारे न दूजा, सब रहे स्वर तोल,

कीर मे, पिक से, हजारो कठ फूटे साथ,
आज परिणय है किसी का आरही बारात,
झडिया हिलती, कि फैले झालरो के जाल,
गज-तुरगो की कतारे हो रही वाचाल,
सब मनाते आज उत्सव, क्या उटज, प्रासाद,
नृत्य-रत गाते मचलते धो रहे अवसाद,
और यह क्या ? दुर्ग पर दीपावली-सी धूम,
कोट पर हर ओर ज्वालाएँ रहीं हैं झूम,
ज्योति से देखो अँधेरा आज है भयभीत,
हो गई आलोक की रे ! आज तम पर जीत,
लक्ष-लक्ष प्रदीप जलते हँस रहे जो साथ,
मोदमग्ना-बातिया झुककर मिलाती हाथ,
द्वार पर जलती मशालो के थिरकते पुज,
झूमके दहके-पलाशो के कि जैसे कुज,
नारियाँ गाती सजाये आरती के थाल,
पुष्प, अक्षत, दीप, चन्दन, खील और गुलाल,
प्राण पुलके, धीर डोला, आज मधु की रात,
एक मीठी पीर उर पर कर गई आघात,
वृद्ध जो, उनको गये दिन आ गए हैं याद,
जो तरुण, उनके हृदय की आज मचली साध,
मुग्ध-बालक, सहज कौतूहल भरे रस-मग्न,
देखते निर्बोध सब कुछ अनुसरण-संलग्न,
खेलते है, खेलती ज्यों सावनी–मधु–वात,
आज परिणय है किसी का, आ रही बारात,

और लो, वह आ गई है सामने बारात,
दीर्घ-स्वर-उद्घोष, बजते वाद्य अनगिन साथ,
हिनहिनाते अश्व धरती पर पटकते पाँव,
आज सा देखा नही आरोहियो मे चाव,
ले रही है आज दोनों की चपलता होड़,
खीचते ये, वे रहे किस गर्व से मुख मोड,
हिल रहे हौदे, कि बजती घटियो की माल,
आज सी पहले न सभव गज चले है चाल,
स्वर्ण-गहनों से लदे, बहु-चित्र चित्रित गात,
चल रहे चचल मचलते कर विविध उत्पात,
पथ जन-संकुल, निरन्तर बढ रही है भीड़,
आज पछी तक न सोये, हिल रहे है नीड़,
घेरकर चलती कतारे पदचरों की साथ,
पाँव उठते संग, सीधा ताड़-तरुसा गात,
मध्य मनहर-अश्व पर वह कौन है आसीन ?
राजसी है वेश, जन-जन वन्दना मे लीन,
अग सुगठित, शक्त, भुज आजानु, वक्ष विशाल,
पुष्ट जघा भीच, वश मैं किये पशु-वाचाल,
ग्रीव उन्नत, दृष्टि मे सम्राट का सा गर्व,
है यही वर, आज इनका पुण्य-परिणय-पर्व,
नृपति 'गंगाधर', कि झांसी राज्य के अधिराज,
व्यक्ति के अनुकूल ही है आज शोभा-साज,
कर रहे साभार सबकी वन्दना स्वीकार,
हो रहा हर ओर मोद-निमग्न जय-जयकार,

झाँकते है गृह-झरोखो से हजारो चाँद,
हट गये घूघट, बनी लज्जा मधुर—उन्माद,
खजनों से दृग लगाये टकटकी पथ बीच,
मुक्त जन-मन रूप की मादक-सुरा मे सीच,
और सम्मुख वह बृहत्-अट्टालिका पर कौन ?
इगितो से बात करता-सा, अधर से मौन,
तारको के बीच शशि मुसका रहा अकलंक,
दीर्घ-दृग, चचल पुतलियाँ, चाप-सी भ्रू-बक,
रूप-जल से खेलती दो मछलियाँ-सुकुमार,
चाह बढ़ती लोचनो की देख बारम्बार,
बाल-रवि-सा तेजमय आनन अरुण, अभिराम,
प्राण-पट पर खीचते है नयन चित्र-ललाम,
कौन है यह अगना ? विधिजा, अनिद्य, अनूप,
कल्पने ! देखा कही ऐसा सलौना-रूप ?
मत सता, चल, और आगे चल, चली चल पास,
हा, कि धरती का विहग मै छू सकू आकाश,
सिधु की श्यामल-तरगो से लहरते केश,
रेशमी परिधान, आभूषण-सुसज्जित वेश,
झूमते है वक्ष पर बहुमूल्य मुक्ता-हार,
ज्योति जिनकी अग-आभा पर हुई बलिहार,
खेलती यों अरुण-अधरो पर मधुर-मुस्कान,
फूल की हो ओस से जैसे प्रथम पहचान,
काँपते पाटल-पखुरियों मे अधर-पुट लोल,
हँस उठी कोई तरुण-कलिका कि सम्पुट खोल,

मत्त-यौवन, विगत शैशव, सधि का यह काल,
मजरी की डाल झूले गध-अध-रसाल
रूप की मादक-सुधा का खोल अक्षय-कोष,
घोलती वातावरण को कर रही मदहोश,
नाम है सुन्दर 'मनू', इस पर्व की श्रृङ्गार,
स्वत सम्मोहन चला आया मनुज-तन धार,
रूप-गुण-आगार, कैसे सिधु की लू थाह,
शब्द सीमित, कर न पाते है सहज-अवगाह,
डूबते है भाव लेकिन मिल न पाता पार,
पार सीमा का, अपरिमित जो, न उसका पार,
अनुपमा कह दूं इसे तो, एक केवल राह,
धन्य वह जो पा गया इसके प्रणय की छाह,
धन्य है वह लेखनी जो खींच पाये चित्र,
कौन शिल्पी की कला यह मूर्तिमान विचित्र ?
तूलिका वह कौन जिसने भर दिये ये रग ?
शील, गुण, सौन्दर्य, अनुपम आ मिले है सग,
यह वधू है, आज इसका पुण्य-परिणय-पर्व,
देवि ! स्वागत-रत सजा है आज नगर सगर्व,

सामने विस्तृत कनातो से सजा मैदान,
मध्य मडप, साज-सज्जा का सकल-सामान,
प्रज्वलित है यज्ञ-वेदी, दीर्घ मंत्रोच्चार,
डालते वेदज्ञ पूत-हविष्य बारम्बार,

सर्पिणी-सी ले लहर उठती शिखाऐं झूम,
फैल चारों ओर छाया गध-वाही धूम,
प्राण मे करता अलौकिक-चेतना-सचार,
गूजती है कर्ण-भेदी शख-ध्वनि-गुजार,

भावनाओ का अनूठा खेल है ससार,
सृष्टि का आधार मन का यह मधुर-व्यापार,
पुण्य-परिणय, दो हृदय मिलते जहां अनजान,
भेद और अभेद की होती जहाँ पहिचान,
द्वैत से अद्वैत का सवेद्य मधुर-मिलाप,
ग्रन्थि खुलती और हट जाती यवनिका आप,
भेद का अस्तित्व, विचलित-भावना की भ्राति,
जो हरण करती जगत की मोददायी शाँति,

फूल-सौरभ, चन्द्र-राका, हम रहे दो जान,
वे नहीं दो, बुद्धि का यह द्वैत ही अज्ञान,
एक से ही दूसरे का है यहाँ अस्तित्व,
एक से ही दूसरे का है प्रकट व्यक्तित्व,
खोज लेता जो यहाँ अद्वैत का यह तत्व,
सत्य है मिलता उसे संसार में अमरत्व,
पुण्य-परिणय-पर्व, यह पावन-प्रणय का पर्व,
भावनाओं की मनोहारी विजय का पर्व,
प्रेम जीवन-साधना का चरम-विकसित रूप,
प्रेम, प्राणों की तपस्या फलीभूत अनूप,

प्रेम, कण-कण मे कि जिसका है सनातन वास,
प्रेम, धरती पर झुका कब से विकल-आकाश.
कौन है जिसने नही पाई प्रणय की पीर ?
कौन है जिसको नही भाई प्रणय की पीर ?
सुन रहा हूँ मै पपीहे की अधीर-पुकार.
कौन है इसके हृदय में वेदना का ज्वार, ?
यह कली के मूक-अधरो की सलज-मुस्कान,
भाव की अभिव्यक्ति, आकुल-साध का आव्हान,
ये उछलते दौडते निर्झर चले किस ओर ?
कौन इनकी साध, इनकी साधना का छोर ?
कोकिला की कूक, चातक का सजल-सगीत,
कोक के करुणा भरे मनुहार के ये गीत,
वह शिखी का नृत्य, बहती आँसुओं की धार.
धो रही है युग-युगो से किस व्यथा का भार ?
गा रहे सब एक स्वर से, कौन है यह गीत ?
झूमते सब सुन जिसे, यह कौन है संगीत ?
मोद से मादक, हृदय का कौन है यह दाह ?
हर अधर को चाह जिसकी, कौन है यह आह ?
प्यास, जिस पर तृप्ति न्यौछावर हुई सौ-बार,
गूंजती हर वीणा से यह कौनसी झनकार ?
प्रेम, जीवन-साधना का चरम-विकसित रूप,
प्रेम, प्राणों की तपस्या फलीभूत अनूप,
प्रेम, कण-कण मे कि जिसका है सनातन वास,
प्रेम, धरती पर झुका कब से विकल आकाश.

प्रेम, जोवन के लिये निर्वाण का सोपान,
प्रेम, जीवन को मिला सबसे महत्-वरदान,

डल रही भाँवर, पुलकते हैं सभी के प्राण,
गूंजते, रम घोलते समवेत मगल-गान,
दे रहीं तोपे सलामी, कर्ण-भेदी नाद,
मब उमगो में पगे, मब में नया उन्माद,

हो गया है परिणय सम्पन्न,
मिला जीवन को नया सिंगार,
रहे बजती प्राणों की वीण,
गूंजती रहे प्रणय-झनकार,
बने अक्षय सुख-श्री का कोष,
बनो मानवता के आदर्श,
और क्या दूं ? वाणी का अर्घ्य—
—समर्पित, करो इसे स्वीकार ।

द्वितीय सर्ग—

अंधकार का कवच भेदकर किरणों के शर छूटे,
धो देने कालिमा जगत की पुंज प्रभा के टूटे,

नीरवता हो गई पराजित, विजयी कोलाहल है,
झरने उछल चले, नदियों की धार हुई चंचल है,

आलोकित आकाश, अरुणिमा हँसती डोल रही है,
ढाल ओस की सुधा विश्व की आँखे खोल रही है,

सरसी की अनगिन-साधो से सरसिज फूल उठे है,
किरणों के दल लहर-लहर पर झूला झूल उठे है,

हिली डालियां, खुले अलस-दृग, चंचल चिड़ियां बोली,
अँगडाई लेकर कलियों ने कोमल-पाँखे खोली,

रंग-रंग के राशि-राशि फूलों के झुरमुट झूमे,
मतवाले भौरों ने धुले अछूते-आनन चूमे,

शीतल, गंध-भार मे बोझिल, मन्द-पवन मदमाया
हरसिंगार चू पडे सुरभि ने हृदय-हृदय सरसाया,

मधुबन मचल उठे, मुसकाई पाटल की कल-क्यारी,
पीने मधुर-पराग तृषित भृङ्गों की चली सवारी,

नीली-पीली चपल-तितलियां करती है रँगरेली,
बैठ-बैठ उड जाती नटखट सुधा-सुरभि से खेली,

चले विहग, उद्दाम-उमंगे मचली नभ छू लेने,
गीत अधर पर, दृढता उर में, तने हवा में डैने,

तन्द्रा ढली, मिला जगती को क्रमिक-कर्म का सम्बल,
नगरी चेतन हुई, पथ पर दौड़ चली है हलचल,

कृषक चले खेतों को श्रम के पावन-गीत गुँजाते,
हल काँधे पर, पुष्ट-वृषभ चलते सँग-सँग इतराते,

दूर नाज के खेत समीरण में लहरे लेते हैं,
कितना मोद शिथिल-प्राणों में इनके भर देते हैं,

इनका जीवन कर्म, कर्म संचालक है जीवन का,
कर्म-हीन तो पूर्ण न होता लघु-कण तक इस वन का,

वन जिसमें झंखाड़-झाड़ है चारों ओर कटीले,
जिसे उलझकर यहां निकलना आता है वह जीले,

जीले वह जो कर्म-व्रती हो, शोलों पर चलता हो,
दीप वही सार्थक जो तम की छाती पर जलता हो,

नीड़ वही है जो मिटकर भी बिजली को ललकारे,
मनुज वही है, रहे पूजते जिसके चरण दुधारे,

शीश भुकाये रहे हिमालय जिसकी अगवानी मे,
पाहन पिघलाने की क्षमता हो दृग के पानी मे,

विश्व कर्म का रगमच है, जीवन है अभिनेता,
सागर तरना है तो बढ चल तरी कर्म की खेता,

कर्म-देह मे श्वास-स्नेह का, ज्ञान सजग प्रहरी है,
इन तीनो के बल पर जीवन की गरिमा ठहरी है,

हुआ सवेरा, नगरी जागी, जीवन-क्रम चलता है,
बुझते दीप सृष्टि के, श्रम का अमर-दीप जलता है,

खुले द्वार, सरक्षक-सैनिक चेतन टहल उठे है,
निशा शेष थी कहाँ, नीद मे क्षण दो-चार कटे है,

पर्वो में कितने दिन बीते, नीद कहाँ से आती,
मन कहता है, निशा आज थोडी-सी तो बढ जाती,

सुघर राज-प्रासाद, पार्श्व मे खिला हुआ है मधुबन,
होड़ ले रहा नन्दन-वन से यह धरती का उपवन,

भिन्न-भिन्न फूलों-कलियों से लदी-झुकी लतिकाएँ,
जी करता इस हरियाली मे खुलकर नाचे-गाएँ,

मोती से नन्ही-दूबा पर झिलमिल झलक रहे हैं,
किरणों के दल जिन्हे पिरो लेने को ललक रहे है,

वह झुरमुट के पास खड़ी है जो मृग-नयनी-बाला,
दीन-रूप को रूप-कान्ति का ज्यों दे रही उजाला,

आस-पास कलियों-सी बिखरी हँसती सखी-सहेली,
खेल रही फूलों से, फूलों सी वह कौन नवेली ?

पहचानी प्रतिमा लगती है और पास आ जाऊँ,
देखूं, करूं वन्दना, दो क्षण जीवन सफल बनाऊँ,

कल की 'मनू' आज झांसी की रानी 'लक्ष्मीबाई',
धन्य हुआ वह देश कि जिसने यह विभूति है पाई,

मांसल देह शक्ति-का घर है, गठे हुए अवयव हैं,
तरुणाई का फूट रहा जिनमें अपार-वैभव है,

दृढता ने कोमलता का ज्यों अमल-आवरण पहना,
आज निकट से देखा, इसको अनय कोमला कहना,

चौदह वर्ष वयस है, लेकिन अंग पूर्ण-विकसित हैं,
रूप-शक्ति का अद्भुत-संगम, मेरे प्राण चकित हैं,

भोला-शैशव बीत सभी पर आती है तरुणाई,
युग दुहराते जिसे, गीत वह गाती है तरुणाई,
खड़ी सोचती है 'यह कैसा मादक-परिवर्तन है' ?
नई-नई लगती है दुनिया, खुले सुमन-सा मन है,
कौंध उठा जो शिरा-शिरा में, यह बिजली-सा क्या है ?
बरस गया सहसा-प्राणों पर मधु-बदली-सा क्या है ?

मन ही मन मे विकल मृगी-सी चौकडिया भरती हूँ,
दुनिया से डर नही, आज तो अपने मे डरती हूँ,

लगता है, इन खग-बालाओ सी मैं भी उड़ जाऊँ,
मुक्त पवन मे धरा-व्योम के बीच मग्न हो गाऊँ,

धुनी-रुई मे कोमल-मेघों की कन्दुक से खेलू,
बादल बरस उठे शीतल बूदो को झडियाँ झेलू,

किरण-तूलिका मे अम्बर के पट पर चित्र बनाऊँ,
रजनी के शिशुओं की टोली आये उन्हे दिखाऊँ,

कैसी मीठी पीर प्राण की आ महमान बनी है,
जीवन की हर साध आज तो रस की धार सनी है,

सागर में सरिता-सी मिलकर खो जाने की चाहें,
मुसकानो मे मधुर अधर पर नर्तित कैसी आहें,

फूल, कली, लतिकाएँ, तरुवर, सब अपने लगते है,
वैसे मधुर, नीद मे जैसे सुख सपने लगते है,

यह सब सपना ? या कि सत्य है ? जो कुछ देख रही हूँ,
मुग्ध भावना की लहरो मे कितनी देर बही हूँ,

कब से खडी-खड़ी लहरों पर बुदबुद सजा रही हूँ,
कैसी पागल हूँ कि आप अपने से लजा रही हूँ,
मैं न एक, सबके जीवन में यह क्षण आते होगे,
सब मुझसे कल्पना-लोक में महल बनाते होंगे,

सबके दृग उद्भ्रात भटकते होगे स्वप्न-भवन में,
राग भरी कामना किलकती होगी सबके मन में,

ऐसा कौन यहाँ जीवन का सम्बल एक न चाहे?
संघर्षों के बीच स्नेह का आँचल एक न चाहे,

एक अपूर्ण, जहां दो मिलते, वहां पूर्णता आती,
यही रहस्य जानकर सरिता फूली नही समाती,

यही जानकर निर्झर गिरि से गिरते है, बहते है,
चट्टानो पर शीश पटकते हैं, मन की कहते हैं,

क्षार-क्षार होते, मिटकर भी सरिता में मिल जाते,
यही सत्य है, मिटते है जो, वे न कभी मिट पाते,
यह अस्तित्व-समर्पण मन की सबसे बडी विजय है,
इसी समर्पण-महत्तत्व का यह जीवन अभिनय है,

अपना अपनापन खो देना हार नही जीवन की,
मन को किये सकुचित रहती सीमा अपनेपन की,

इस सीमा को तोड चला जो, उसने जीना जाना,
क्षुद्र-अहं-घट फोड जला जो उसने जीना जाना",

बही जा रही है अप्रतिहत भावों की घन-धारा,
ऐसी धारा बना नही है जिसका कहीं किनारा,
चौदह वर्ष वयस है केवल, हँसी अभी तरुणाई,
पर विवेक की कुण्ठा जैसे इसे नहीं छू पाई,

ज्ञान आयु की क्षुद्र-परिधि मे कभी नही पलता है,
जिज्ञासा, तप, श्रम की डाली पर सदैव फलता है,

शास्त्र-मनन, व्यायाम, स्वस्थ-चिन्तना-अपार शैशव का,
जिसके सँग छाया से, उसको दुष्कर क्या है भव का,

सदा सत्य-अन्वेषी रहकर इसने ज्ञान सहेजा,
देखा, परखा, समझा, चेतन-अनुसधान सहेजा,

वह से अधिक प्रौढता इसके प्राणो ने है पाई,
जीवन की हर ग्रंथि युक्ति से इसने है सुलझाई,

काल-चक्र अपनी नियमित-गति से चलता जाता है,
बीत गया जो क्षण, वह बीता, नही लौट पाता है,

दुनिया घूम रही है परिवर्तन की एक धुरी पर,
उदित-अस्त चल रहे बँधे-से कर्म-शील निशि-वासर,

दिनकर की हिमवान-रश्मियाँ जलने लगी अनल-सी,
ताप-तप्त-आकाश, धरित्री होने लगी विकल-सी,

रेखांकित उन्नत-ललाट पर श्वेद-बिन्दु आ झलके,
मोती से, नीहार धो उठे जैसे पात कमल-के,

पास आ गईं चपल-दासियां सुन्दर-मुन्दर-काशी
हँसते अधर कि जैसे इन तक आई नही उदासी,

समवयस्क-तरुणी-बालाएँ, दासी, लेकिन सखियां,
देख रही यो जैसे चन्दा को चकोर की अँखियां,

बोली 'कबसे सुलझाती हो, ऐसी कौन पहेली ?
किस दुविधा से उलझ रही हो तबसे खडी अकेली ?

कौन गाँठ है ऐसी जिसको गुपचुप खोल रही हो ?
खडी मौन हो, पर लगता है जैसे बोल रही हो,

किस पुरवाई ने चिन्तन की डाल हिला डाली है ?
किन सुधियो से भरी छलकती प्राणो की प्याली है ?

हम भी सुने, गुने. वह क्या है जटिल-समस्या जाने ?
हो सकता है समाधान क्या ? कुछ हम भी अनुमाने,

रानी हँसी, शुभ्र-मणियो-सी दन्त-पंक्तिया दमकी,
इन्द्र-धनुष के किसी वृत्त मे जैसे बिजली चमकी,

काँपे अधर, बोलने की सी मुख मुद्रा बन आई,
घटा बरसने के पहले ज्यो लेती है अँगडाई,

"जीवन सीमित, किंतु समस्याओ की क्या सीमा है ?
पार नही होती चिन्तन की यह रजनी भीमा है,

मन की मधुर-भावनाओ का है ससार निराला,
उछला कन्दुक-सा है जिसने जितना इसे उछाला,
प्राणों की इच्छाये इतनी, नही गगन में तारे,
पूर्ण न होती, रह जाता है खिन्न मनुज मन मारे,

फिर अभाव का चिंतन जीवन का विषाद बनता है,
अपने लिये मनुष्य अनिर्णित तब विवाद बनता है,

लेकिन फिर भी मव मिकता पर महल बनाते रहते,
क्षणिक मोद के लिये स्वप्न के नीड सजाते रहते,

यह ससार अनन्त-रहस्यो का अद्भुत-सगम है,
कहीं पर्व परिणय का है, तो कही करुण-मातम है,

सुख-दुख के दो कूल, मध्य जीवन की धारा बहती,
साँसों के स्वर अपनी गाथा जाने किससे कहती,

जीवन-यात्रा सरल नही है, उलझी है, दुर्गम है,
सीमा-हीन पथ है नीचे, शीश काल निर्मम है.

एक-एक लघु-क्षण जीवन का बँधा हुआ चलता है,
झर जाने के लिये दीन प्रत्येक फूल खिलता है.

सदा साथ चली है नर के नश्वरता की छाया,
मिटना निश्चित है नब जाने क्यो रहता भरमाया,

'मै', 'मेरा', आसक्ति हृदय की मानव-दुर्बलता है,
जिसके कूलों में बन्दी यह अपने को छलता है,

कभी सोचती हूँ, जीवन की कैसी करुण कहानी,
उर में धू-धू ज्वाला जलती, आँखों में है पानी,

जन्म मिला तो मिली रुदन सबसे पहले थाती,
आँसू की माला शैशव के लोचन रही सजाती,

निश्छल-हृदय, श्वेत-पट, जिस पर कोई दाग़ न आया,
मात्र अनुसरण-शील, न कोई अपना और पराया,

जिज्ञासा थी, कौतूहल था भोली-अस्फुट-वाणी,
लगती थी निर्बोध-हृदय को दुनिया बडी सुहानी.

नये-दृश्य थे, गीत नये थे, नया-नया परिचय था,
मूक-प्रश्न थे मन के जिनका प्रत्युत्तर विस्मय था,

कभी रूठना, कभी मचलना, अनजानी-क्रीड़ा थी,
पीड़ा थी, अभिव्यक्ति मौन थी, पागल-सी पीडा थी,

नया दीप था, बाती नूतन जलना सीख रहे थे,
उठना-गिरना, गिरना-उठना, चलना सीख रहे थे,

अभी शीश पर आया कर्तव्यों का भार नही था,
जीवन बोझ नही था, इतना कटु ससार नही था,

शैशव बीता, यौवन की कलियो ने लोचन खोले,
मादकता के मधुरे-कोकिल प्राण-कुज मे बोले,

आम्र-बौर की मदिर-गध से झूम उठी अमराई,
प्राण पुलकने लगे, कामनाओ ने ली अँगडाई,

अनगिन-साधे जगी, रूप पर चचल-लोचन रीझे,
छलकी पुलक प्रमाद-वारुणी, प्यासे-अधर पसीजे,

नही जन्म से मिली विषमताओ की जग को खाई
नही जन्म से मिली भावना भेद-भरी, ललचाई,

नही जन्म से द्वेष, दम्भ की ज्वाला हमने पाई,
नही जन्म से साथ शक्ति-सत्ता-भैभव-मद लाई,

अनुचित इच्छाओं मे जग मे सबको रूप मिला है,
सिंधु छोडकर हाय ! सकुचित कैसा कूप मिला है,

लगा हृदय को जितना सुन्दर यह सबका सब मेरा,
इसी सधि से आया करता मन मे छली-अँधेरा,

उभरी स्वत्व-लालसा मन के जाने किस कोने से,
कैसे मिले प्रसून कहो तो काँटो के बोने से ?

गुण-अवगुण दो सहज-वृत्तिया है मानव के मन की,
गुण-अवगुण से जयी, साधना यह कठोर जीवन की,

कर्म-ज्ञान-उत्सर्ग-स्नेह की जो ज्वाला धधकाता,
वह मनुजत्व सदैव स्वय की पशुता पर जय पाता,

तपे बिना सोना भी तो कब कुन्दन कहलाता है ?
पतझर में तपकर बीहड-बन नन्दन कहलाता है.

तब निर्बोध, बोध आया तो जाना मै न अकेला,
धरती पर मुझसे असख्य का लगा हुआ है मेला,

यह भी देखा, इनमे मुझमे बिलकुल भेद नही है,
रक्त यहाँ तो इनकी काया में भी स्वेद नही है,
बोला मन का सत्य कि मुझसे ये भी तो अधिकारी,
निर्णय से पहले पशुता ने दूजी ठोकर मारी,
"सुख जितना बाँटो, वह निश्चित दुगना बढ़ जाता है,
दाह समैटो जितना सुख के वह समीप आता है,"

कठिनाई से नही, मनुज भय, सशय से मरता है,
अपने ही हाथो अपना पथ शूलो से भरता है,

इस अभाव-सशय ने भर दी पीडाओ से झोली,
धधक उठी हिसा की हारे मन मे भीषण होली,

हिसा का उत्तर प्रतिहिसा देती बढ़कर आगे,
बुझने दे यह अग्नि, प्रज्वलित मत कर इसे अभागे,

नही शक्ति-से, हृदय-हृदय से ही जीता जाता है,
ऐसी जीत, हार से जिसका कभी नही नाता है,

किंतु अहिसा कभी नही है अन्तर की कायरता,
पूत-अहिसा कभी नही है मानव की अक्षमता,

करे मनुज की रक्षा, दानवता को बढ़ ललकारे,
निबल उबारे, युग-पीडा से अपने प्राण सँवारे,

शक्ति नही वह जो रचना की जगह ध्वस में रत है,
शक्ति सर्जना है, क्षमता है, गति है, कर्म सतत है,

अहकार ने मन के पकिल-कोटर से तब झाँका,
गरम-रक्त ने शीश उठाकर अपना छल-बल आँका,

द्रुपद-सुता का चीर कि जैसे, भूख सदा बढ़ती है,
एक-एक सीढ़ी पग धरती यह ऊपर चढ़ती है,

एक बार चढ़ गई, उतरती है फिर कठिनाई से,
हम अतृप्त बस देखा करते चितवन ललचाई-से,

जितना यत्न तृप्ति का होता, उतनी यह प्रबला है,
एक बार कौंधी, न बुझी फिर, यह ऐसी चपला है,

स्वार्थ, दंभ, पद-लिप्सा नर के शीश बैठकर बोली,
गौरव, स्वाभिमान, लज्जा की करुणा जल उठी होली,

अट्टहास कर उठी विजयिनी गर्वीली-दानवता,
अपनी ही कारा मे बन्दी हुई विकल-मानवता,

अपना-अपना स्वत्व कौन कहता है सभी न चाहे,
किंतु स्वत्व से पहले सब अपना कर्तव्य निबाहे,

यह कर्तव्य-परायणता हो अधिकारो से पहले,
औरों को रहने दे सुख से, तू भी सुख मे रह ले,

बूंद-बूंद मिलकर ही सागर सागर कहलाता है,
इस लघुता पर ही महानता का ध्वज लहराता है,

एक बूंद भी पथ-विचलित हो, क्षमता कम होती है,
पर-उपकारी-वृत्ति समन्वय का संगम होती है,
अंकुर फटा वही जहाँ पर मिट्टी नम होती है,
करुणा, समवेदना शांति-सुख का उद्गम होती है,
शुष्क-मृत्ति पर नही डालते जो ममता का पानी,
उनको हरियाली की आशा ? यह कैसी नादानी,
वर्ग-भेद, मानवी-विषमता हर उलझन का कारण,
यह असंतुलित-विश्व बनेगा जाने कैसा नन्दन ?

मैं जो सोच रही थी उसका समय नही आया है,
भावुकता के तट कर्तव्यो का जल चढ आया है,

तब चिन्तन मे व्यक्ति-पक्ष था, यौवन-प्रणय-पिपासा,
रध्र-रध्र से फूट पडी थी उर की मधु-अभिलाषा,

वह मेरे मन की चचलता मादकता मे डूबी,
किंतु देश की दशा देखकर मै उस सबसे ऊबी,

वे रूपाभ-चित्र जीवन के अब मै भूल चली हूँ,
व्यष्टि नही, अब मै समष्टि के सुख के लिये जली हूँ,

कबसे सुलग रही थी उर मे यह भीषण-चिनगारी,
आज धधक उठने की इसने पाई है लाचारी,

यौवन अजर नही है इसका ढलना तो निश्चित है,
जरा-मरण की दारुण-ज्वाला में जलना निश्चित है,

विधि का अटल-विधान, न कोई इसे बदल सकता है,
माटी से जीवन का चीर बचाये चल सकता है ?

मै न रहूँगी, तुम न रहोगी, गाथा शेष रहेगी,
जिसे तौलकर भावी-पीढी नर, पशु हमें कहेगी,
भगिनि ! मधुर-भावनाओं की बेला बीत चुकी है,
अँधियारी स्वर्णाभ-सबेरा नभ का जीत चुकी है,
कैसी काली-निशा, गहनता जिसको भय देती है,
तम-व्याली-विकराल सदा को रवि निगले लेती है,

खड़े किनारे देख रहे जो यह भयभीत-सपेरे,
कैसी इनकी दशा, लाज से व्यथित प्राण है मेरे

विकल हुई हूँ, इन्हे चाहती हूँ यह भेद बताना,
तुमने अब तक इस जीवन का सत्य नही पहचाना,

दो-साँसो के लिये लाज देते हो, लाज न आती,
सावधान ! आँधी न बुझादे नर-गौरव की बाती.

उस सबकी पूजा करते हो जो अनित्य, नश्वर है
और उपेक्षित जो इति-अथ की सीमा मे ऊपर है,

हम सब अक्षम नही, हमारी क्षमता बँटी हुई है,
वृक्ष-वृक्ष कैसा जब डाली-डाली कटी हुई है.

भूलो नही मिला माटी से जो ऋण, हमें चुकाना,
एक-दो नही, सौ-सौ शीषों का है अर्घ्य चढाना,

वैभव, स्वत्व, मान, पद, सबसे ऊपर देश हमारा,
इसने पीड़ित-रुद्ध-कंठ से हमको आज पुकारा,
चार विदेशी आकर मेरी धरती के स्वामी हो ?
उससे पहले मृत्यु-पथ के हम सब अनुगामी हों,
मै उनमे से नही सखी ! जो बार-बार मरते हैं,
मैं उनमे से नही मनुजता जो लज्जित करते है,
मैं उनमें से हूं जो हँसते-हँसते मिट जाते है
जीवन के जय-गीत काल की छाती पर गाते है,

आओ आज शपथ ले हम सब, धरती दास न होगी,
मानवता की वधू-सुहागिन कभी उदास न होगी,

करो साधना तन को, मन को सगिनि ! सबल बनाओ,
अबला नही, काल का नारा है, दुर्गा कहलाओ,

रति, रंभा, मेनका बने हम यह वह समय नही है,
चीख, कराह, रुदन, परवशता, जीवन अभय नही है,

बोलो दोगी साथ ? करूंगी धर्म-युद्ध-सचालन,"
दमक रहा है ओज-प्रभा से तरुण-सूर्य-सा आनन,

देख रही है सखियाँ अपलक, विस्मित, ठगी-ठगी-सी,
अचल-पुतलियाँ दृग-कोटर में जैसे जडी लगी-सी,
नई चेतना, नई शक्ति का उदय हुआ है मन मे,
जीवन बदल गया है जैसे इन पावन दो-क्षण मे,
"लो न परीक्षा रानी ! जीवित हम न साथ छोड़ेगी,
अन्तिम साँस शेष है जबतक पीठ नही मोड़ेगी,

धरती बदल रही है करवट, बदल रहा आकाश,
अँगड़ाई ले रहा अनौखा एक नया इतिहास,
देख रही है मेरी आँखे भावी का नव-रूप,
करता, हूँ वन्दना तुम्हारी नव-सर्जना-अनूप !
श्रद्धानत, कल्पना-नयन से देख रहा निस्तब्ध,
रानी ! तुम मे उदय हुआ युग का उज्वल-प्रारब्ध ।

तृतीय-सर्ग--------

कल्पने ! यह चित्र धुँधला हो न जाए,
जो मिला बहुमूल्य सब कुछ खो न जाए,
चल अभी तू भूमिका बस देख आई,
री ! कथा के प्राण अब तक छू न पाई,
चल, बसन्ती-वायु मदमाने लगी है,
कोकिला पचम पुलक गाने लगी है,
चल, अधिक गतिवान जिज्ञासा हुई है,
चल अधिक बेचैन अभिलाषा हुई है,
चल कथा के सिधु की जल-ग्रथि खोले,
डूब ले, अवगाह ले, कृतकृत्य होले,

ढला दिन, अरुण फागुनी-साँझ के घन,
गगन की सघन नीलिमा धो रहे है,
किसी नील-सर मे सरस-पकजो के,
अमल-दल पुलकने विकल हो रहे हैं,

किसी कुज में पुज या पाटलों के,
नरम-डालियो पर खिले झूमते है,
अरुण-फागुनी-साँझ के **घन** सलोने,
गगन से उतर प्राण पर घूमते है.

हुई साँझ, विश्राम की यह घडी है,
थका-रवि उदधि मे छिपा जा रहा है.
दिवस के श्रमिक-पाखियों का चपल-दल,
शिथिल नीड की राह पर आ रहा है,

शिथिल देह से, प्राण उल्लास-पूरित,
मधुरता अधिक आ गई भावना मे
प्रणय-विव्हला संग मोई खगी का
हुआ चित्र साकार है कल्पना मे.

निशा की सरस-दूधिया-चाँदनी का
हरित-पल्लवों मे कभी झाँक जाना
कभी वेदना के अगम-सिंधु डूबे
किसी कोक का मग्न विरहा सुनाना,

कडकते हुए शीत में तन मिलाये,
तपन बाँटना, मुस्कुराना, लजाना,
कभी बात करना, कभी देखना बस,
कभी रूठ जाना, कभी हँस मनाना.

मधुर-सुधि-जनित मोद की मूर्च्छना का,
परो मे अधिक वेग आने लगा है,
उड़े जा रहे लक्ष्य की ओर तन्मय,
इन्हे घोसला अब बुलाने लगा है.

हुई साँझ, नभ मे घनी-लालिमा है,
झलक सूर्य की पूर्ण ओझल हुई है,
निशा आ रही, साँझ बुझते दिये-सी
अधिक ज्योति-प्रभ, और चचल हुई है,

कृषक श्रात घर लौटत आ रहे है,
वृषभ राह की धूल से खेलते है,
चपल-घटियो के मधुर-स्वर-मनोहर,
रुनुन-झुन हृदय मे सुधा घोलते है,

खडी द्वार पर बाट जोहे बधूटी,
लगी टकटकी प्राण-धन आ रहे है,
मिलन की घड़ी दूर है प्राण लेकिन—
मिलन-आस पर ही लुटे जा रहे है,

खिला मजु उल्लास का मास मोहक,
सुमन-हरसिंगारी बिछौना बिछाये,
सुरभि के सरस-कोष खोले, समीरण,
लुटाती चली आ रही मन लुभाये,

मृदुल-डालियो को झुका झूलते है
खिलाड़ी अरुण-पीत-गेंदे-हजारी,
कही पास चम्पा-हरा महमहाया,
किसी वारुणी मे नही यह खुमारी,

कही बैंगनी-लाल-पीले पियाबाँस
रगीन फूले नयन मोहते है,
कही मौगरे-श्वेत गोभी-गठे-से
नई फुनगियो पर लगे सोहते है,

कही झूमती वीथिया-पाटलो की,
कही हँस रही चाँदनी-सी चमेली,
कही लाज से झुक रही, कनखियों-से
बुलाती खड़ी है जुही वह नवेली

कही गुल्म-गुलदावदी के खिले है,
कहीं नील, श्वेताभ कचनार फूली,
कही मस्त चम्पा खिला झूमता है,
कहीं रातरानी पवन-दोल झूली,

कही फूल गुण्डैर के मस्त होकर
उछलते बडी चोटियों को हिलाते,
कहीं छा रहे लालिमा के घनो से
घने लाल-टेसू नयन बाँध जाते,

कही पीत-सरसों किसी सिंधु जैसी
लहरियाँ बनाती हुई डोलती है,
हृदय चाहता है कि दो डुबकियाँ ले,
ठगी-सी लुटी-कामना बोलती है,

अचल-नीर के वक्ष पर खोल पाँखे,
किसी नव-वधू-सी कुमुद-लाजवती,
मुदित खुल गई देखकर चन्द्र-आनन,
पिया सामने है, निशा है बसन्ती,

दिवस ढल गया है, नखत झिलमिलाये,
कुमुद खिल गई है, कमल सो गये है,
समीरण बही जा रही है हिमानी,
तृषाकुल-भ्रमर क्रोड में खो गये है।

विश्व तन्द्रालस हुआ है, ले रहा विश्राम,
सत्य से है स्वप्न की संसृति अधिक उद्दाम,
घोर नीरवता बनी है काल की अधिराज,
और पदच्युत, मौन कोलाहल, रुके गृह-काज,
किंतु इस निस्तब्धता के घन-कवच को चीर,
ध्वनि-प्रतिध्वनि, गूंजते है यह कहाँ मंजीर ?
घुँघरुओं का रोर, साजों की मधुर स्वर-धार,
कल्पने ! चल देख आएँ कौन यह त्यौहार ?
जागरण का पर्व कोई, यह कि जिसका नाद,
जाग जाए, फिर कठिन दबना हृदय की साध,
किस कुशलता मे सजा है आज यह प्रासाद,
देखले शोभा कही, बलिहार हो अविवाद,
आम्र-पल्लव के बँधे है द्वार बन्दनवार,
घूमते प्रमुदित पहरुए, मोद का क्या पार ?
भित्तियों पर भिन्न-रंगो के बने हैं चित्र,
मुग्ध मुद्राएँ मनोहर, विविध भाव विचित्र,
दीप-मालाएँ इधर बिखरा रहीं आलोक,
सोम देता है उधर तम चाँदनी से रोक,
कक्ष में हलचल बडी है, आ रही आवाज,
कोकिला से कंठ, वाणी, वीणा जैसा साज,

आज एकत्रित सुहागिन-नारियों की भीड़,
उत्लसित यह मदभरी किलकारियो की भीड़,
आज इनका पर्व, सबकी भावना रस-लीन,
मध्य 'लक्ष्मी', मूर्त लक्ष्मी ही कि ज्यों आसीन,
'हल्द-कुकुक-पर्व', यह उल्लास का त्यौहार,
या कहूं यह ऋतु-नृपति मधुमास का त्यौहार,
भिन्न-वर्णो, भिन्न-रंगों के मुकुल अभिराम,
ढेर से लाये गये, सौरभ पगे, श्री-धाम,
देख अद्भुत आज कर आई सभी श्रृगार,
आभरण की, रूप की मिश्रित-प्रभा का-ज्वार,
कक्ष-भीतों में जडे उन दर्पणों पर दौर
वेग प्रतिबिबित, परावर्तित, परिष्कृत और,
छोड जाये प्राण-पट पर अमिट अपनी छाप,
क्या कहूँ कैसा कलामय कुशल-केश-कलाप ?
विविध सुन्दर-शैलियों मे बाँध मृदु कच-भार,
पुष्प पाटल-मौगरे के साज मजुल-हार,
मोतियो की कुतलो मे गूथ लड़ियाँ लोल,
बैठ सबके बीच औरो से रहीं है तोल,
देख, आई कुछ तरुणियाँ श्याम-अलके खोल,
फेन-सी कोमल, धरा पर है रही हिल-डोल,
शुभ्र, चन्देरी-विनिर्मित साडियाँ परिधान,
रूप की कल-रश्मियो को भेजती है छान,
माँग में सिदूर जैसे तम किरण दे चीर,
नासिका नथ से नथी छीने हृदय का धीर,

लोचनों में एक पतली श्याम-अजन-रेख,
खीचले मन-प्राण जिसकी ओर भी लें देख,
प्रौढ कुछ ज्यो डाल पर मुरझा चले हों फूल,
छा रही है दीन-काया पर जरा की धूल,
श्यामता घटती चली, पकते चले हैं केश,
साज-सज्जा से कहाँ तक छिप सकेगा वेश,
और तरुणाई, रगों मे बिजलियो का जाल,
चल रहा जीवन कि जिनका आँधियों की चाल,
दीप्त कुन्दन-देह पर छबि का सलौना-भार,
रूप इनका दे रहा श्रृङ्गार को श्रृङ्गार,
चूनरी झीनी जरी की देह पर रगीन,
चॉद पर आई बदरिया हो कि एक महीन,
कचुकी अक्षम, कसे उन्मद-उरोज-उभार,
बध देता ढील साँसो का चढाव-उतार,
तप्त जीवन की दुपहरी का सुहाना-काल,
रूप-यौवन फल-फल बोझिल झुकी है डाल,
कुछ किशोरी, सधि की बेला बढाती पाँव,
आ गया यौवन, न बचपन से हुआ अलगाव,
क्षीण-कटि होती चली, बढता नितम्बाकार,
प्राण मे कैसी पुलक का हो रहा संचार ?
एक कौतूहल हृदय बेधे हुए दिन-रात,
कौन मीठी-पीर उर पर कर गई आघात ?
कौन यह अनुभूति ? कैसा यह नशा अज्ञात ?
लालसाओं के खुले यह कौन से जलजात ?

आ बसी उर में कहाँ से यह निगोडी-लाज ?
भीत-हरिणी-सी दुराती देह की सब साज,
कल्पने ! थक मन, चलीचल, मै अधीर, विभोर,
गौर-प्रतिमा है प्रतिष्ठापित वहाँ, उस ओर,
देख तो किस श्रम-लगन से कर रही श्रृङ्गार,
छिप गई है मूर्ति, फूलो का लगा अम्बार,
छा रही हर ओर जलती-धूप की मधु-गंध,
धूम्र-सुरभित डोलता है कक्ष मे स्वच्छन्द,
जल रहे आलोक बिखराते हुए शत-दीप,
मोम धरती दे कि जैसे चाँदनी से लीप,
आगई बेला, मुखर है मौन मगल-गान,
सज चुका है आरती के थाल का सामान,
जल रहा घृत-दीप, सुलगाया गया कर्पूर,
भावना के खेल, मन के ताप हैं सब दूर,
उठ रही रानी, कि ज्यों साकार-सुषमा-मूर्ति,
हो गई है सगुण-गौरी की धरा पर पूर्ति,
आ गया गोरे-करों में आरती का थाल,
मुँद गये श्रद्धा-विनत हो आप नयन-विशाल,
बज उठे घडियाल-घटे, बढ गया है जोश,
वृद्धि करता और शंखों का गरज गुरु-घोष,
बोलते हैं कंठ सौ-सौ आरती के बोल,
तन उठा है झूम, तन्मय-मन उठा है डोल,
प्राण मेरे झूमते हैं इन सभी के संग,
बज रहा भीतर कहीं पर मचल मधुर-मृदंग,

आरती सम्पन्न, सब है वन्दना मे लीन,
दृग मुदे है, सिर झुका है, प्राण है तल्लीन,
अर्चना सम्पन्न, सब बैठी लिये कल-हास
मानती सौभाग्य रानी का मधुर-सहवास,
कर रही जो प्यार से घुल-मिल सभी से बात,
दम्भ कोई छू न पाया है कि इनका गात,
भेद की कोई न सबके बीच है दीवार,
ऊर्ध्व लघुता-उच्चता से स्नेह का ससार,
जोड़ता है एक धागा विश्व भर के प्राण,
धन्य है करता वरण जो स्नेह का वरदान,
और यह क्या हो गया आरभ इनके बीच,
खिलखिलाती एक-दूजे को रही है खीच,
लेरही सकोच मे वह प्राध-धन का नाम,
फूट पड़ते है हँसी के प्रस्रवण-उद्दाम,
एक छूटी, आगई बारी अपर के पास,
छेडती रानी स्वय, देती अधिक उल्लास,
पूछती है, "क्या तुम्हारे प्राण-धन का नाम ?
हम न लेगी छीन इसमे लाज का क्या काम"
यत्न करती, स्वर उभरता, लाज लेती खीच
सग लेते दाँत अधरो को अचानक भीच,
गूँज जाता साथ सब के हास का मधु-नाद,
देह दुहरी कर छिपाती वह जगा उन्माद,
एक, फिर दूजी, यही क्रम चल रहा निर्बाध,
नाम लेना, फिर लजाना, ज्यों हुआ अपराध,

आ गया चलता हुआ क्रम पूर्णता के पास,
आ गया है अब चरम-उत्कर्ष पर उल्लास
दमदमाई मजु-मुख-छबि लाज से हो लाल,
मोदमग्ना, हो गई सखिया अधिक वाचाल,
नासिका-पुट है प्रकंपित, कर्ण है आरक्त,
देखती सब, टकटकी बाँधे नयन-अनुरक्त,
एक हो सब कर उठी अधिकार से अनुरोध,
ले रही या छेड का पूरा पुलक-प्रतिशोध ?
सोचती रानी कि कैसे ले सकूगी नाम ?
छूटना दुष्कर बहुत, किस युक्ति लूँ काम,
एक क्षरण सोचा, सकुच बोली दबाती साँस,
'गग धारे शीष बैठे गगधर कैलाश,'
मोद से मन मे अधिक विस्मय हुआ सचार,
किस कुशलता, बुद्धि-बल से हो गई ये पार,
और फिर मचला मधुर परिचित-हँसी का नाद,
पर्व चलता ही रहे, सबके हृदय की साध,
आदि का पर अंत, दासी बाँटती है भोग,
जा रहीं है सब सराहे यह सरस-संयोग,
अमिट श्रद्धा ले चले सब के हृदय है साथ,
स्नेह रानी का, मिली कोई अमर-सौगात,
मिल गया है भाग मेरा भी, हुआ कृत-कृत्य,
लग रहा है बन गया मै मर्त्य, आज अमर्त्य,

आरसी-सा व्योम, पूरा सोम नभ के बीच,
विश्व को शीतल सुधा-जल से रहा है सीच,
झिलमिलाती तारिकाएँ, आज लेकिन मन्द,
एक होता मुक्त, दूजे पर लगा प्रतिबध,
इस नियम पर चल रहा है यह सकल ससार,
फूल खिलते आज करती धूल कल श्रृंगार,
चाँदनी से पुत रहा है हिम-धवल आकाश,
दूधिया-छाया चली आई धरा के पास,
श्वेत, कोमल, यह रुई-सी बिछ रही हर ओर,
कौन मादकता चली है विश्व देने बोर ?
यह विटप किसने चमेली के दिये झकझोर ?
फूल इतने, दिख नही पाती धरा की कोर,
आज कितनी वारुणी ये पी गये है वृक्ष,
लग रहा, पीकर कि जैसे जी गये हैं वृक्ष,
और कितनी पी गया है आज यह पवमान,
छू रहा जिसको, उसी के झूम उठते प्राण,
आज की यह रात जैसे प्यार की ही रात,
रात, प्राणों के मधुर-श्रृंगार की ही रात,
व्योमचुम्बी जगमगाता है सुघर-प्रासाद,
सो चुका है पर्व का वह गूजता मधु-नाद,
गृह, नगर-पथ हो चुके है अब सभी सुनसान,
रात के प्रहरी विचरते है अकेले श्वान,

हाँ, कभी पागल-टिटहरी बोल जाती दूर.
स्वर चिरन्तन-दाह का धोया हुआ मजबूर.
वेदना मिटती न इसकी, युग चले है बीत
पीर इसकी पीर से पाती नहीं है जीत
चाँदनी से छत धुली है राज-गृह की आज,
घूमते रस-मग्न झाँसी-राज्य के अधिराज,
चाँदनी-सी सग रानी वह खड़ी है पास
दृग झुके, आरक्त-अधरों पर हँसी का वास,

"आज कितनी देरसेहै लौट पाये आप ?"
प्रश्न उत्तर के लिये पलभर हुआ चुपचाप,
और उत्तर मौन का सम्बल लिये उस ओर,
प्रश्न लेकिन मौन की काया रहा झकझोर,

'नृत्य अभिनय, आज क्या-क्या देख आये आप?
शौर्य का उत्कट-प्रदर्शन, या कि प्रणयालाप,
मैं रही वंचित, मगर सुनकर मिले आभास,
दृश्य का पूरक बनेगा श्रव्य का उल्लास,'
प्राण-तंत्री पर हुआ यह दूसरा आघात,
कब दिया उत्तर हृदय ने, हो न पाया ज्ञात,

"आज शाकुन्तल हुआ रानी कुशल-अभिनीत,
लग रहा देखा करू, यह रात जाये बीत,
दृष्य अबतक घूमता है दृग-पटों पर स्वच्छ,
देखता अबतक शकुन-दुष्यत मै प्रत्यक्ष,
नृत्य 'जूही' का, हृदय देता कि जिसपर ताल,
अग-सचालन पिलाता वारुणी-सी ढाल,
और वह 'पजनेश' की कविता-कला-रस-धार,
पूर्ण नख-शिख वर्णनों की व्यजना सुकुमार,
कल्पनाओं का अनौखा बुन गया वह जाल,
प्रेम की, श्रगार की अनुभूतियाँ-उत्ताल,
सुन रहे अबतक जिन्हे प्रिय रस-छके-से प्राण,
रूप-यौवन की सुरा पर यह बिके-से प्राण,

सब सुनाते जा रहे है नृपति भाव-विभोर,
प्राण सीमा-हीन इच्छाये रही झकझोर,

"एक ही थी खिन्नता बस, आप होती साथ,
और भी होती नई तब आज हर की बात,
आपकी अभिरुचि नहीं अब तक सका हूँ जान,
यत्न करता हूँ कि जल्दी हो सके पहचान,
घुड़सवारी, जोड़, मृगया और शर-संधान,
दौड़ना, मलखब, तलवारे, वनों की छान,

यह नहीं लगते मुझे तो नारियों के कर्म,
शौर्य, रक्षा, युद्ध, यह रानी पुरुष का धर्म,
हम न हों तो आप सब ले शीष पर यह भार,
हम न हो तो आप ले लें हाथ मे तलवार,"

सुन अधर पर और गहरी हो गई मुसकान,
स्नेह-मिश्रित व्यग्य, स्वर-शर ज्यो चढ़े है शाग,

"शौर्य, हाँ, यह तो पुरुष का ही रहा अधिकार,
और नारी, वह गृहों की ही सदा श्रृंगार,
किंतु पौरुष नृत्य-अभिनय में रहे तल्लीन,
बन विलासी प्रेम की बैठा बजाये बीन,
तब उसे झकझोरने भी एक नारी शेष,
नग्न-सत्य-ज्वलत, यह केवल नही आवेश,
है बँधा परतत्रता की बेड़ियो में देश,
देखकर होता नही जिसके हृदय को क्लेष,
वह मनुष्य नही, उसे सौ-बार है धिक्कार,
पाप लगते है मुझे तो यह सकल-श्रृंगार,
आपके उर में नही उठती कभी क्या टीस ?
ग्लानि से झुकने नहीं लगता कभी क्या शीष ?
नृत्य-अभिनय, साज-सज्जा का नही यह काल,
आ रहा है सामने बढ़ता हुआ भूचाल,

नृत्य-अभिनय से भगाये जा सकेंगे शत्रु ?
घुघरुओं से भी हराये जा सकेंगे शत्रु ?
या करें परतन्त्रता की शृंखला स्वीकार ?
प्राण करते हो नहीं यह बात अंगीकार,
संगठित हों, शक्ति संचित कर उठे ललकार,
दासता से मुक्त या सर्वस्व हम दें वार,
एक ही बस प्राण-धन मेरे हृदय की साध,
क्षम्य हो यह सत्य लेकिन अनधिकृत अपराध,
मुक्त हों हम, नृत्य-गीतों की बहे रस-धार,
भावनाओं का करें जी खोलकर शृंगार,
और फिर 'पजनेश' के नख-शिख सुनें हम झूम,
क्षम्य तब हो भी सकेगी यह चुहल, यह धूम,
गूंजती है आज पर कर्तव्य की ललकार,
सुन रही हूँ पीडितों का क्षुब्ध-हाहाकार,
देश गौरव की सुरक्षा है प्रथम-नर-धर्म,
गौण इसके सामने है शेष सारे कर्म,
क्या रहेगा हाय ! मेरे देश का भवितव्य ?
स्वप्न देखा जो हृदय की कामना ने भव्य
क्या न पहुँचेगा कभी यह पूर्णता के पास ?"
उग्र-अन्तर्दाह, बरबस बढ़ गया उच्छवास,
प्राण की मुख पर झलकती आरही है पीर,
छटपटाया हो बँधा जैसे हृदय का कीर,
किंतु पलभर बाद पहले सी सरल-मुस्कान,
भंगिमाएँ एक दृढ़ता की लिये पहचान,

योगियों-सा सयमित पल मे विकल-आवेश,
दे रही प्रत्येक मुद्रा एक नव-सन्देश,

हैं उधर नृप क्षुब्ध, यह था मर्म पर आघात
कील-सी जाकर जड़ी थी प्राण पर हर बात,
सौ-घनो की चोट थी, जागा हृदय का सत्य,
चेतना जिसकी मचल करने लगी है नृत्य,

"देश पर अपने मुझे रानी ! नही अभिमान ?
प्राण मे प्यारा मुझे इस देश का सम्मान,
मोह जीवन का नही, सुख मे नही आसक्ति,
मैं प्रकट कैसे करूं अपने हृदय की भक्ति,
कौन है जो चाहता रहना शुभे ! परतत्र ?
कौन चाहेगा रहे जीवित बना बस यत्र ?
किन्तु इस परतत्रता का क्या करू प्रतिकार ?
धो सकूंगा मै अकेला क्षुब्ध-हाहाकार ?
शत्रु क्षमतावान है, हम है सभी असमर्थ,
शक्ति सीमित, जानती हो युद्ध का क्या अर्थ ?
शत्रु जय करना न अब इतना रहा आसान,
फूट आपस की बनी सबसे बड़ा व्यवधान,
सो गया है देश की इन धमनियों का रक्त
बँट गई है स्वाभिमानी-शक्ति वह अविभक्त,
शौर्य के यह राग केवल कल्पना के शब्द,
क्या कहूँ, प्रतिकूल है इस देश का प्रारब्ध

तुम उलहने दो, कहो जो, सब मुझे स्वीकार,
रोग ऐसा यह कि जिसका अत्र नही उपचार",

'कौनसी उलझन कि जिसका हो न एक निदान ?
कौनसी बाधा कि जिसका हो नही अवसान ?
प्राण की सच्ची-लगन हो, कर्म पर विश्वास,
आदमी अक्षम नही, छू ले सहज आकाश,
क्या असभव है ? कठिन बस एक निश्चित-ध्येय,
पा गया जो मृत्यु से भी वह कि अपराजेय,
यह कहा तक ठीक हम सोचे प्रथम परिणाम,
कर्म से पहले बने फल चिन्तनीय-विराम,
कर्म का निश्चित मिलेगा आप ही प्रतिदान,
प्राप्ति की चिंता प्रथम,तब क्या हुआ वलिदान?
हम करें निर्भीक जो कुछ है हमारा कर्म,
छोड दे परिणाम की चिता, निभाऐ धर्म,
पूर्ण संभव है कि हम अक्षम न पाऐ जीत,
किंतु आशका पराजय की करे भयभीत,
यह निराशा भी हृदय की है कहाँ तक ठीक ?
छोड दे भयभीत होकर कर्म की ही लीक ?
युद्ध से पहले करों से छोड़ दें तलवार ?
हार से पहले करे हम हार को स्वीकार ?
हम करेंगे शक्ति-सचित, हम करेंगे युद्ध
कौन रोकेगा ? करेगा कौन पथ अवरुद्ध ?
शत्रु देखे मृत्यु भी कितनी हमें आसान
मृत्यु, ऐसी मृत्यु जीवन के लिये वरदान",

सत्य की अनुभूति से व्याकुल हुए है प्राण,
भावना चेतन, अधिक चचल हुए है प्राण,
डूब-उतराते विकल चिन्तित खड़े हैं भूप,
एक निश्चय ले रहा है ज्यो कि निश्चित-रूप,
रात आधी ढल गई है, स्वच्छ है आकाश,
और भी तब से हिमानी होगई वातास,
पास आता जा रहा है पूर्ण-उज्वल-प्रात,
विश्व को देने अमर-आलोक की सौगात,

प्राण-सर ! श्रद्धा-कमल फूले रहे,
चेतना की नाल पर भूले रहें,
कल्पने ! आलस्य यह कैसा अभी,
देख ले चल, जो नही देखा कभी,

झाँसी का इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग
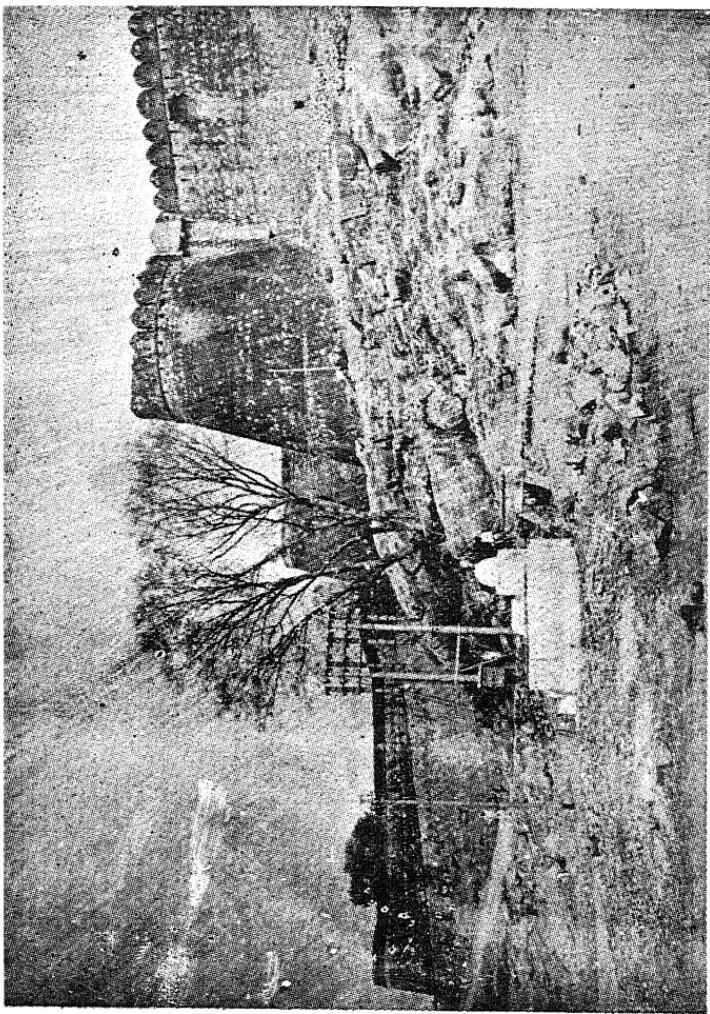
चतुर्थ सर्ग —

समय का चक्र अविरत चल रहा है,
नियति का व्रत सदा अविचल रहा है,
दिवस आते अरुण का ले सहारा,
न परिवर्तन किसी से किंतु हारा,
उसे भी साँझ की दे छद्म-छलना,
सिखाती है नियति तम मे कलपना,
समय का चक्र यह रुकता नही है,
किसी के सामने झुकता नही है,

निशा का हो गया अवसान देखो,
अरुणिमा की नई-मुसकान देखो,
हँसी साजे अजब-श्रृंगार ऊषा,
अनौखी आज इसकी वेष-भूषा,
अरुण-आनन, सुनहरे-केश बिखरे,
कि जैसे चेतना-सन्देश बिखरे,
लहरते गिरि-शिखर पर डोलते है,
विहग विस्मित हुए से बोलते है,

जगत पर स्नेह की धारा बहाती,
अगिमित ओस के मोती लुटाती,
चराचर को जगाती आ रही है,
बडी तन्मय प्रभाती गा रही है,
धरा पर कर दिया जैसे कि टोना,
शिथिल अब रह गया कोई न कोना,
किरण छूकर मुकुल फूले हुए है,
उमंगों में भरे, ऊले हुए है,
पवन के दोल पर झूले हुए हैं,
अभी ये मृत्तिका भूले हुए है,
नदी की धार चचल हो गई है,
निनादित मधुर कल-कल हो गई है,
दमकते दर्पणो से ताल मंजुल,
बिछाते वीचियो के जाल मंजुल,
मचलकर मत्त-सरसिज खिल गये है
इन्हें भी चेतना-वर मिल गये है,
उडे जाते विहगम चहचहाते,
पवन पर पंख तोले गुनगुनाते,
हवाएँ वह रही कैसी हिमानी,
पुलकता मन, बहुत बेला सुहानी,
निशा की नीद से नगरी जगी है,
प्रभा से मुग्ध-मुख धोने लगी है,

हलचल पूरित, कोलाहल पूरित झाँसी,
जीवन के नव-उद्बोधन की अभिलाषी,
आकाश मुदित इस पर बरसाता सोना,
समृद्धि-रिक्त रह गया न कोई कोना,
दुर्भेद्य-कवच-सा है परकोटा भारी,
बीहड़-बन चारो ओर सघन, भयकारी,
है बीच इन्द्र-नगरी-सा नगर सुहाना,
दुष्कर है इस पर लोलुप-दृष्टि उठाना,
गृह, उटज, सौध, सब गए सँवारे कैसे ?
मन की मधु-साधे हम सॅवारते जैसे,
वन फूले, मधुबन फूले, वृक्ष हरे है,
पत्तो-फूलो से बोझिल, झुके, भरे है,
गौरवशाली नभचुम्बी-भाल उठाये,
चट्टानों की काया सुदूर फैलाये,
वह दुर्ग, स्वय सामने खड़ी है दृढता,
या मूर्तिमान यह बैरी की असफलता,
जिस पर केशरिया-केतन फहराता है,
या फिर झाँसी का गौरव लहराता है,
कल्पने ! दूर क्यो ? चल समीप से देखे,
इसकी महानता हम घुल-मिल अवरेखे,
वह देख दमामे क्यों दमदमा उठे हैं,
किस उत्सव के उन्मद-उपकरण जुटे हैं,

उल्लास ले रहा घर-घर में किलकारी,
नगरी की शोभा आज देख तो न्यारी,
पुरजन उमंग में भरे दिखाई देते,
सूखे-सूखे मुख हरे दिखाई देते,
लगता है सबने आज नया-धन पाया,
मरु से प्राणों ने कोई सावन पाया,
प्रासाद नये-कोलाहल से चेतन है,
प्रहरी प्रमत्त, हर अनुचर मोद-मगन है,
तोपों ने अपनी कहने को मुख खोले,
सन्देशा-वाहक चले छूट कर गोले,
गर्जन जिनका सब सुना लौट आता है,
उत्साह और भी दूना हो जाता है,
ध्वनि बोली 'झाँसी ने अधिकारी पाया',
सौ-सौ कंठों ने यह मगल दुहराया,
प्रतिध्वनि बोली "आशा के फूल खिले हैं,
राजा-रानी को राजकुमार मिले हैं,
सिंहासन को नूतन-श्रृंगार मिला है,
प्यासी जनता को पारावार मिला है,
बंधन को जैसे पावन-मुक्ति मिली है,
परतंत्र-मुक्ति को या नव-शक्ति मिली है,
अरि के आशा-वन पर पर तुषार बरसा है,
झाँसी पर साधों का निखार बरसा है,
यह काल, शीष पर कुटिल-विदेशी बैठे,
छल-छद्म, अनय की नीच-शक्ति पर ऐंठे,

बक से इसके वैभव पर घात लगाये,
ये ताक रहे थे कोई अवसर आये,
लेकिन अवसर टल गया, नया दिन आया,
विश्वासों का सागर अनन्त लहराया,
आनन्द आज सीमाएँ तोड चला है,
अवसादों के दल पीछे छोड़ चला है,
नगरी की नगरी रागरंग में डूबी,
उन्मादों की धोई-उमग में डूबी,
मन की साधे जब आँख खोल देती हैं,
कोयल-से मीठे बोल बोल देती हैं,
कलियों का मधु मकरन्द घोल देती हैं,
मर्यादाओं का धीर तोल देती हैं,
तब कोई बन्धन रोक नहीं पाता है,
मन की चंचलता टोक नहीं पाता है,
जनता प्रमाद का झूला झूल रही है,
जीवन की सारी पीडा भूल रही है,
झाँसी की डाली-डाली हुई हरी है,
उसकी प्यारी रानी की गोद भरी है,
उत्सव के सारे साज सजे पलभर में,
मंगल-बँधाइयाँ बजती है घर-घर मे,
प्रासाद बना है देख अनोखा दानी
इसने जैसे लुट जाने की ही ठानी,
निश्चय है चाहे कोष रिक्त हो जाये
कोई वंचित पर नही लौटने पाये,

नृपराज स्वय दे रहे दान अंजलि भर,
आशीषो की दे रहे झड़ी नारी-नर,

दिन भर उत्सव के राग-रग मे डूबे,
रस-भीगे हृदय न लेकिन अब तक ऊबे,
पल-पल दूना उत्साह दिखाई देता,
अप्रतिहत मोद-प्रवाह दिखाई देता,
दोपहरी ढली साँझ की बेला आई,
छनती है नीले-अम्बर से अरुणाई
पल्लव-सोपानो पर कोमल-पग धरती,
रश्मियाँ चपल भू पर आ रही उतरती,
जिसको छूती उसका मन पुलका देती,
साधों की प्याली का मधु छलका देती,
गिरिवर कनकाभ-किरण-मालाएँ पहने,
सरिताओं को भी मिले स्वर्ण के गहने,
उन्मुक्त-अबीर उड़ाती सध्या आई,
लेकिन मृग-जल इसकी मजुल अरुणाई,
सध्या. इसकी छाया में तम आता है,
लाली का, तम का ऐसा ही नाता है,
धीरे-धीरे घिर चली सघन-अँधियारी,
दिन का दिन बीता, अब रजनी की बारी,
नीरवता डाल रही है अपना डेरा,
तन्द्रा ने चेतनता का घर आ घेरा,

लेकिन झाँसी वैसी ही मतवाली है,
अबतक लहलही उमगों की डाली है.
कितने दिन बाद खुली है नाटक-शाला,
झिलमिला रही अनगिन दीपो की माला,
कल्पने, देख उठ रही यवनिका ऊपर,
कौतूहल मन का और हो चला उर्वर.

धाक-धिन, धिन-धाक तबलों पर पड़ी है थाप,
संग सारंगी मचल कर ले रही आलाप,
मन्द-मन्द मृदंग बोला, झन-झनन मंजीर,
बेधने मन को लगे स्वर-माधुरी के तीर,
और वह नैपथ्य में घुघरू बजे सुकुमार,
आ रहा कोई, मिली संकेत-सी रस-धार.
टक-टकी बाँधे नयन सौ-सौ कला के द्वार,
झनझना कर बज उठा है प्राण का हर तार,
आ गई लो नर्तकी नख-शिख किये शृंगार,
देह धारे रूप-यौवन का सलौना-भार,
ले रहे लहरें नितम्बों तक खुले कच-श्याम,
चन्द्र-मुख घेरे दिठौना-से, मचल अभिराम,
दीर्घ-लोचन, लीक-अंजन की खिची छबिवान,
मोह लेती मन मचल मुख पर मधुर-मुसकान,
स्वर्ण-गहनों मे सजा तन रेशमी परिधान,
ढीठ-चितवन-शर किये जाते हृदय-संधान,

पग सधे, जिनमे बँधे घुँघरू रहे झनकार,
आ गई लो नर्तकी नख-शिख किये शृंगार,
दे रहे वादक नया-उत्साह भर कर ताल,
बुन रही स्वर-माधुरी तल्लीनता का जाल,
लास-मुद्राएँ, मनोहर भाव-भगी साथ,
वल्लरी दोलित कि जैसे. काँपता है गात.
चल रहे कर, उँगलिया देती मधुर-अभिव्यक्ति,
चेतना के स्रोत-सी निसृत कला-आसक्ति,
हिल रहे है शीष सौ-सौ, झूमते है प्राण,
चल रहे हर भगिमा से तीक्ष्ण रस के बाण,
कौन साँचे मे गये ढाले लचीले-अग ?
नाचती पलके, पुतलिया, नाचते भ्रू-भग,
घूमती चचल, उछलती मीन-सी मद-मत्त,
घाघरे की घूम भँवरी-सा बनाती वृत्त,
चरण-कपन-वेग अब आरोह पर झनकार,
श्रांत-वादक लग रहे है मानते-से हार,
थरथराये डाल जैसे आंधियो के भार,
अंग हिलते, साथ हिल उटता सकल-ससार,
नृत्य बीता, आ गई नीचे यवनिका झूल,
यह कला-लाघव न लेकिन हम सकेगे भूल,

ममय का चक्र अविरत चल रहा है,
नियति का व्रत सदा अविचल रहा है,
दिवस आते अरुण का ले सहारा,
न परिवर्तन किसी मे किंतु हारा,
उसे भी माझ की दे छद्म-छलना,
सिखाती है नियति तम में कलपना,
ममय का चक्र यह रुकता नही है,
किसी के सामने झुकता नही है,
अभी जो फूल डाली पर खिले है,
मुरभि के कोष पल भर को मिले हैं,
करेगे शूल ही श्रृङ्गार इनका,
बनेगी मृत्तिका गलहार इनका,
नियम कितने करुण निष्ठुर-नियति के,
बँधे यति-श्रृंखला से पाँव गति के,
हँसी के द्वार पर हैं अश्रु प्रहरी,
जगत, बस, वेदना की झील गहरी,
कि जिसमें डूबते उतरा रहे हम,
अजाने मूक गोते खा रहे हम,
किसी को भी नही कल का पता है,
लगी प्रारब्ध-तरु जीवन-लता है
अभी कल तक जहाँ सपना रुदन था,
बहा निर्बाध मधु का प्रश्रवण था,
अमित-उल्लास की वीणा बजी थी,
नवेली साध की दुलहन सजी थी,

हँसी इतनी, अधर बोझिल हुए थे,
न ऐसे उर कभी पागल हुए थे,
वहाँ साधें सिसकती देखता हूँ,
वहाँ करुणा बिलखती देखता हूँ,
ढला दिनमान, काली–यामिनी है,
मचलते मेघ, दमकी दामिनी है,
तमिस्त्रा हो रही पल-पल घनी है,
धरित्री लग रही क्यों अनमनी है ?
बँधी हिलकी, पवन क्यों रो रहा है ?
विधाता वाम जैसे हो रहा है,
सितारे ओढ काजल खो गए हैं,
हमारे भाग्य मानों सो गए हैं,
अभागी कल्पने ! यह भी बदा है,
सबेरा रह सका किसका सदा है,
पलक झपके, हुई वीरान झाँसी,
बरसती है सघन भीषण-उदासी,
मिला वरदान बनकर श्राप जैसे,
हुआ हँसना निमिषभर पाप जैसे,
न देना छीन लेने से भला है,
तुझे भी हाय विधना ! क्या मिला है ?
अभी साँसे मिली, जीवन मिला था
नया-दीपक अभी दो-क्षण जला था,
निराश्रित-पथ का पाथेय था जो,
पराधीना-प्रगति को श्रेय था जो,

अभी अपना न था, मेहमान था जो,
निरपराधी, महज-अनजान था जो,
असम्बल-देश को सम्बल मिला था,
पराजित-शक्ति को नव-बल मिला था,
वही एकाग्र-प्रश्रय छीन लेना,
हृदय की शेष-आशा बीन लेना,
कहा का न्याय यह तेरा विधाता ?
हृदय होता अगर तो जान पाता,
मगर तू ईश है, मानव नही है,
तुझे अनुभूति यह सभव नही है,
रही थाती मनुज की वेदना है,
इसे सहना अनौखी-साधना है,
हुआ नृप-शिशु अचानक स्वर्ग-वासी,
डसी है राहु ने विधु की कला-सी,
सकल-प्रासाद हाहाकार पूरित,
रुदन, आहें, करुण-चीत्कार पूरित.
नृपति परवश, विकल, निष्प्राण से हैं,
धँसे उर में विषैले-बॉण से हैं,
इन्हे भी यह अभागे-क्षण मिले है,
अनश्वर वेदना के व्रण मिले है,
न जिनका विश्व में उपचार कोई,
असम्बल-आस मन की फूट रोई,
पहुँचकर तीर पर डूबी तरी है,
लता फलने न पाई थी, झरी है,

लगा भीतर सभी टूटा हुग्रा है,
उमगो का चषक फूटा हुग्रा है,
बहुत बेचैन है, विक्षिप्त-से हैं,
हुए ये भव-विभव निर्लिप्त-से है,

इधर ये है विकल, उस ग्रोर रानी,
व्यथा इनकी करे क्या व्यक्त वाणी ?
झुकाये शीष वह उद्ग्रीव-हंसी,
लगी हो मीन जैसे काल-बंसी,
छलक जाएँ न, ग्राँसू पी रही है,
हृदय पर धर शिलाएँ जी रही है,
मगर ग्राँसू, कि थमते ही नही हैं,
धधकता उर कि जमते ही नही है,
सरल है रे ! यहाँ सुख बाँट लेना,
ग्रसभव है मगर दुख बाँट लेना,
इसे सहना पडा सबको ग्रकेले,
यहाँ दहना पडा सबको ग्रकेले,
हृदय धुँधुग्रा रही है ग्रग्नि ऐसी,
इसे समवेदना घृत-दान जैसी,
हुग्रा है ग्ररुण-बदन विवर्ण कैसा ?
कलाधर-मजु-मुख मसि-जाल जैसा,
कलित-कुतल हुए हैं धूल-धूसर,
खुले-फैले हुए जो ग्रंस-मुख पर,

मलिन है वेश, मृण्मय चेतना है,
लुटी, उजडी सुहागिन-कामना है,
प्रजा विस्मित अचानक हो गया क्या ?
करे अनुमान कोई, खो गया क्या ?
जिसे पाने नयन पथरा चले थे,
प्रतीक्षित-प्राण अब उकता चले थे,
बड़ी मंहगी निराली-निधि मिली थी,
तमिस्त्रा बेधने की विधि मिली थी,
अमल-आशा-किरण का पुंज था जो,
व्यथित-उर को कि मोद-निकुंज था जो,
वही मन का मधुर-श्रृंगार खोया,
विजय-विश्वास का आधार खोया,
गया, सब कुछ गया, निर्धन हुए ये,
नही ऐसे कभी उन्मन हुए ये,
निराशा मे सभी डूबे हुए है,
पराजित है, सहज ऊबे हुए हैं,
दुखी पुरजन बिलखते, आह भरते,
सभी पीडित बने क्या धीर धरते,
अकल्पित-आपदा सिर पडी है
व्यथा के नीर की कैसी झड़ी है,
हुई है वेदना का सिंधु झाँसी,
हताहत कीर-सी शर-बिद्ध झाँसी,
अरी ! तू कल्पने क्यों रो रही है,
परीक्षा आत्म-बल की हो रही है,

यही ज्वाला तपायेगी हृदय को,
यही कुन्दन बनायेगी हृदय को.
चली चल, पथ अभी अनत तेरा,
खगी ! ओझल अभी है वृत नेरा,
चली चल धीर ! अनथक पख खोले,
मिली दुर्लभ घडी कि प्रशस्त होले,

नही विपदा कभी आती अकेली,
खड़ी है शीष पर यह नित नवेली.
दिवस कितने गये, राते ढली है,
खिली अबतक न मानस की कली है,
नृपति हतचेत, जीवन चल रहा है,
मगर हिम-खण्ड जैसे गल रहा है,
व्यथा है, शून्यता है, बस निराशा.
न जीवन की रही अब शेष आशा,
हृदय टूटा, सकल-उत्साह छूटा,
मिला वरदान-जल, पर पात्र फूटा,
सहेजे कौन ! बरबस ढुल गया है,
सुधा के सिंधु में विष घुल गया है,
बड़ी गहरी हृदय ने चोट खाई,
अभी तक थम नही पाई रुलाई,
कनक-तन घुन गया, रोगी हुऐ है,
जगत नीरस हुआ, योगी हुऐ हैं

कसे परिकर, अनय की दृष्टि साधे,
उधर बैठे विदेशी ध्यान बाँधे,
"विधाता, एक यह विपदा गई है",
(मिली दुर्लक्ष्य को आशा नई है)
"उधर राजा हुआ रोगी अभागा,
समझ लो अब हमारा भाग्य जागा
नही आशा रही, अब क्या चलेगा?
हुआ निश्चय कि यह रोड़ा टलेगा,
गया ये, और बस झाँसी मिली है,
हुआ सौभाग्य अब अपना बली है,
समूचे देश पर हम छा गये हैं,
विजय के द्वार तक हम आ गये हैं,
उठा जो शीष, कुचलेगा दुधारा,
यहाँ साम्राज्य अब होगा हमारा",

कुटिलता ने जहाँ नय को न देखा,
वहाँ नर-सत्य ने भय को न देखा,
तपस्वी ने कभी आशय न देखा,
किया है कर्म जय-सशय न देखा,
इधर मनुजत्व है, तप, पूत-ऋजुता,
उधर पशुता, अनय, दंभी-कुटिलता,

हुऐ रोगी-नृपति पर्यंक-शायी,
तपस्या की अभी इति-श्री न आई

हुऐ क्या-क्या नही उपचार प्रति-दिन?
मगर उपचार मे टलते न दुर्दिन
बिगड़ती जा रही दिन-दिन दशा है,
सघन होती चली काली निशा है,
बड़े चिन्तित सचिव, सामन्त, पुरजन,
कुतूहल-बद्ध मन विस्फार लोचन,
"अरे ! यह क्या अजाने हो रहा है,
डगर मे कौन कटक बो रहा है ?"
बजे घडियाल जी भर कर विनय के,
मगर बदले नही निश्चय समय के,
हुई होनी सदा, टलती नही है,
किसी बल की यहाँ चलती नही है,
नृपति लेटे हुऐ पलके झुकाये,
अधर भीचे हुऐ, पीडा दबाये,
मिला आभास कोई, दृग भरे है,
हुए कुछ और व्रण ज्यादा हरे है,
मिली जो चेतना सहसा नई है.
लगा जैसे कि बेला आ गई है,
अधर खोले, दबाये दाह बोले,
प्रकपित-स्वर भवन में मुक्त डोले,
"मुझे अपनी न अब आशा रही है,
मरण ने डोर जीवन की गही है
मगर इसका नही सन्ताप कोई,
समय का भी हुआ है माप कोई ?

रही केवल यही मन मे उदासी,
कही वीरान हो जाये न झाँसी ?
नही इसका रहा अवलंब कोई,
मिली पतवार, पर अनजान खोई,
यही दुख है कि निस्सतान जाऊँ,
किसी का तो सहारा छोड़ पाऊँ ?
अकेली जो सकेगी हाय ! रानी ?"
कपोलों पर ढुला दी बूंद पानी,
"तनिक भी सुख इन्हें मै दे न पाया,
इसी परिताप ने मुझको जलाया
मिला अवसाद ही इनको सदा है,
रही चिन्ता हृदय की सम्पदा है,
इन्हे पाकर हुआ मैं धन्य सचमुच,
मिला व्यक्तित्व मुझे अनन्य सचमुच,
इन्हे पाया, महा-वरदान पाया,
गुणो का पर न कर सम्मान पाया,
सुखी ये, मै असन्तोषी रहूंगा ?
बहुत दुख दे चुका हूँ, अब न दूंगा,"
गिरा गद्गद् हुई, अवरुद्ध-वाणी,
उधर सुनकर हुई बेचैन रानी,
भवन में सिसकियों का नाद डोला,
उसाँसों ने चरम-अवसाद घोला,
"अरे ! क्यों यह विकलता ? रोरही हो,
महाधीरा ! कि धीरज खो रही हो,

मुझे फिर कौन धीरज-दान देगा ?
प्रजा की पीर कोई बाँट लेगा ?
मुझे केवल सहारा एक तुम हो,
नयन पौछो कि मेरी पीर कम हो,
तुम्हारा दुख अधिक देखा न जाता,
मगर क्या हो, लिखा लेखा न जाता,
शुभे ! मै चाहता हूँ गोद ले लो,
विगत भूलो, नवल-आमोद ले लो,
प्रजा को वह मधुर-अवलब होगा,
तुम्हे भी शून्यता-विष्कभ होगा,
मिलेगा चीर कोई, जी सकोगी,
हलाहल व्याधियो का पी सकोगी,
इसे राजा बना अभिषेक करना,
रहे स्वायत्त झाँसी, यत्न करना,
तुम्हारी शक्ति मैं पहचानता हूँ,
तुम्हे मै पूर्ण-सक्षम मानता हूँ,
मिलेगा कौन तुमसा योग्य-शासक ?
कठिन है खोजना तुमसा प्रबन्धक,
समय थोडा रहा, स्वीकार कर लो,
हृदय का यह अकेला भार हर लो"

चला अनुरोध, पर आदेश आया,
समर्थन मे इन्हे नत-शीष पाया,

मिला संकेत स्वीकृति का अबाधित,
हुऐ मुदमग्न-नृप, समुदाय प्रमुदित,
जुटी सज्जा सकल, वेदज्ञ आये,
मरुस्थल पर कि जैसे मेघ छाये,
हुई शास्त्रोक्त-विधि से गोद पूरी,
हृदय-सन्तोष की नव-शोध पूरी,
प्रजा ने यह नया अवलब पाया,
सभी को नाम 'दामोदर' सुहाया,
नृपति चैतन्य, कुछ संज्ञा मिली है,
(मगर अब ज्योति बुझने को जली है)
अरे ! वह हो चली निस्तेज काया,
अँधेरा दृष्टि-पथ पर झूम आया,
चली है लुप्त होने चेतना अब,
बिछुड़ती है सदा को वेदना अब,
जकड़ते जा रहे अवयव अकिंचन,
मरण के द्वार नर-बल का समर्पण,
'विदा', दो हिचकियाँ बस, प्राण छूटे,
सभी पर वेदना के श्रृंग टूटे,
अभी आंसू न सूखे, भाग्य फूटा,
छली-प्रारब्ध ने सर्वस्व लूटा,
ठगी-सी रह गई विक्षिप्त रानी,
हृश्य ने दो-निमिष घटना न मानी,
मगर यह सत्य है, सपना नहीं है,
किसे इस अग्नि में तपना नहीं है, ?

कराही, जा गिरी शव पर अचेतन,
निरख रोने लगा है आप रोदन,
हुआ अभिशाप यौवन, भार जीवन,
बना सौभाग्य का सिदूर अजन,
लिपट कर मृत्तिका से रो उठी है,
व्यथा मन की नयन से धो उठी है,
कराहों से ध्वनित है सब दिशाएँ,
निशा, आकर मिली सौ-सौ निशाएँ,
अँधेरे-सा अँधेरा है गगन में,
सितारों का न डेरा है गगन में,
प्रकृति मसि-सिधु में ज्यों डूब आई,
कलाधर ने कहाँ प्रभुता गँवाई,
नही जग का रहा आधार कोई,
तिमिर ने ज्योति की नौका डुबोई,
उधर वह चाँदनी विधवा हुई है,
इधर यह चाँदनी विधवा हुई है,
उमगो से हृदय सूना हुआ है,
दबाया दाह, पर दूना हुआ है,
थका धीरज व्यथा के घूट लेते,
विकल-करतल कि छाती कूट लेते,
वसन जर्जर हुए है, केश धूमिल,
पलक सूजे हुए है, देह पंकिल,
हृदय मरुथल, भवन मरघट हुआ है,
नगर सुनसान सिकता-तट हुआ है,

प्रजा उस ओर ढाड़े मार रोती,
नगर-पथ आँसुओं की धार धोती,
मगर सिकता सदा सूखी रही है,
अमित जल-धार की भूखी रही है,
नगर की नारियाँ करुणा-द्रवित है,
नयन-कोटर कि समवेदन-श्रवित है,
हुई है आज विधवा राज-माता,
किसी से यह सुना देखा न जाता,
सभी हतचेत हैं. चेतन उदासी,
लगा रानी न विधवा किंतु झाँसी,

हृदय पर धर पागल ! पाषाण,
कहाँ पाएगी ऐसे त्राण ?
अधीरे ! धीरज मत खो, हाय,
कल्पने ! तू भी तो निरुपाय,
चली चल, यह अदृष्ट के लेख,
देख संगिनि ! जी भरकर देख,
देख, जीवन का दर्शन जान,
उदय का चिर-संगी अवसान ।

पंचम-सर्ग

संध्या ढली, यामिनी आई पहन कालिमा का पट-झीना,
बाँधे हुए प्रशस्त-भाल पर इन्द्र-जाल-सा चन्द्र-नगीना,

तम के कुंतल खोल खेलती अग-जग में छलना माया-सी,
उलझाये उर-उर विपदा के संशय-सी, भय की छाया-सी,

विहग-बालिकाओं-सी किरणे आशा-सी उन्मुक्त गगन में,
किंतु निराशा के घन-तम का पार नही मिलता जन-मन-में,

टँके हुए श्यामल-अंचल में किरणों की डोरी मे तारे,
लेकिन देखे कौन ? यहाँ तो धधक रहे धू-धू अंगारे.

ओ रजनी, अप्सरे ! जगत की पीड़ा से तुम हो अनजानी,
हम मनुष्य धरती के वासी, मन में व्यथा, नयन में पानी,

वहां व्योम की चंचल-गंगा उछल-उछल छल-छल कर बहती,
अपरिमेय-वेदना सँजोये यहाँ हमारी छाती दहती,

लेकिन फिर भी हमें स्वर्ग से दाह-भरी यह धरती प्यारी,
संघर्षों में पले, हृदय-धन अश्रु-माल मुसकान हमारी

अरी कल्पने ! कहाँ गगन की गहन-हरी में डोल रही है ?
अगम, अपरिमित उस रहस्य की कौन ग्रंथिया खोल रही है,

चल, माया के इस मेले मे तुझे मिलेगा मात्र भुलावा,
चल, तेरी प्यारी-धरती से फिर आया है तुझे बुलावा,

देख किसी सिकता-सागर मे ज्यो जल-हीन मीन हो प्यासी,
सज्ञा-शून्य, शिला-सी अचला, चिन्मय, पर मृण्मय-सी झांसी,

महाकाल के क्रूर-बाज के वज्र-करों मे कसी खगी-सी,
देख रही लीला अनन्त की उजड़ी-उजडी लुटी-ठगी-सी,

किसी वीतरागी के निस्पृह निर्विकार-अन्तर से सूने,
नगर-पथ कैसे नीरव है, खोये से पल-प्रतिपल दूने,

वे जगमग-प्रासाद, दुर्ग, गृह, उटज, सौध श्री-हीन हुए है,
शोभा के आगार, विभव के अतुल-कोष ये दीन हुए है,

करुणा-गृह प्रासाद-कुज की एक निभृत-वीथी के नीचे,
हरी दूब पर, मृदु-करतल पर धरे चिबुक, युग-लोचन मीचे,

रानी बैठी हुई न जाने किन अनन्त-सपनो मे खोई,
जाग रही पर तन्मय ऐसी, यह लगती है सोई-सोई,

अरुण-कंज-सा वह मनहर-मुख मुरझाया है पीत हुआ है,
राग-भरे जीवन-बसत का पहला-चरण अतीत हुआ है,

तरुणी लता अभी तरु की बाहो मे दो-पल भूल न पाई,
हाय, कुटिल-आँधी ने इसके कोमल-तन पर धूल उड़ाइ,

छिन्न हुई है, पल्लव बिखरे, सुख सपना हो गया अजाने,
रानी होकर रक बनी, पल मे सब कुछ खो गया अजाने,

श्वेत-वसन तन पर भभूत-से, सूनी-माँग अकाम-हृदय-सी,
प्राण हुए पाषाण, कि सम्मुख बैठी कथा भाग्य के जय-की,

आस-पास उन्मना-दासियाँ देख रही विस्मय-से, दुख से,
जकड़ी हुई व्यथा मे वाणी, बस उछ्वास निकलते मुख से,

जब-जब श्र ंग दाह का साधे हम एकाकी ढोते चलते,
उस नीरवता मे सम्बल-से सुधियो के शत-दीपक जलते,

मानस की सुनसान-पटी पर कितने चित्र उभर आते है,
जीवन के गत-दुख-सुख के क्षण हो साकार सँवर आने है,

किसी कल्पना के निकुज मे भीम उठी उपचेत-चेतना,
जोड़ रही जीवन के बिखरे-पृष्ठो का इतिहास वेदना,

देख रही है वे सोने के दिन, रूपे की जगमग-राते,
राग-रग, रस-रास, स्वप्न रहगई आज वे बीती-बाते,

"ताम्बे मोरोपंत' पिता की प्यारी-दुहिता 'मनू' लाड़ली,
'भागीरथी'-कोख की जायी, बड़े प्यार में पली मन चली,

मातृ-हीन हो गई अभी बस चार-वर्ष जीवन के बीते,
कोमलता के कोष प्राण में भर न सके, रीते के रीते,

पली पिता की गोद, हृदय को मिली प्रखर-पौरुष की थाती,
नारी के सुकुमार-दीप मे धधक उठी नरता की बाती,

बचपन से ही वीर, साहसी, अध्यवसायी, चपल, हठीली,
'नाना धोंडूपन्त पेशवा' की मुँह बोली-बहन 'छबीली'

शौर्य हुआ जीवन का संगी, शास्त्र-मनन, व्यायाम व्यसन थे,
जीवन के अम्बर पर आये मचल कर्म के मेघ-सघन थे,

दिन-दिन नया-निखार कवच-सा करने लगा शीष पर छाया,
तपने लगी साधना की पावन-ज्वाला में उसकी काया,

देह कठिन-श्रम के साधन से संचित किये जारही बल थी,
बुद्धि सृष्टि की जटिल-गुत्थियों के रहस्य खोजने विकल थी,

राम-कृष्ण, सीता-राधा के दृढ़-चरित्र आदर्श बने थे,
अन्तस निर्मल हुआ, गुणों के दिन-दूने उत्कर्ष बने थे,

मृगया, अश्वारोह, रण-कला, जोड़ नित्य का खेल हुआ था,
बुद्धि-शक्ति का इस काया में कैसा अद्‌भुत मेल हुआ था,

अपनी गरिमामयी-धरा पर इसकी श्रद्धा बहुत घनी थी,
जिसकी पावन-माटी से इसकी कुन्दन-सी देह बनी थी,

दीन-देश की दशा देखकर बहुधा लोचन भर आते थे,
कायरता से जीने-वालों पर दो-आँसू झर जाते थे,

शैशव से ही सदा दासता का जीवन अभिशाप मानती,
अन्यायों के आगे शीष झुका देना थी पाप मानती,

शिरा-शिरा में कभी उबलता-लहू दौड़ने लग जाता था,
देह काँपती, अन्तर में कोई भूचाल मचल आता था,

जीवन बढ़ने लगा निरन्तर, अरुण कि जैसे गगन-पथ पर
प्राणो का किशोर-खग चहका नये-राग मे वयस-वृन्त पर,

ताप-तप्त-कचन-सी दमकी देह, सुडोल अग भर आए,
जैसे मधु-वातास परस ले, कोई नव-रसाल बौराए,

शैशव बीत गया, यौवन ने थपकी दी जीवन के द्वारे,
फूल उठा नन्दन-वन जैसे, मेघों के मिल गए इशारे,

कुहक उठी अनुराग-राग भर डाल-डाल कोयल-मतवाली,
नई-नई मदभरी-उमगो ने छलका दी मन की प्याली,

रोम-रोम पुलकन भर लाया, झूल उठी साधों का दोला,
किस बौरी-बयार ने बहकर दिगदिगत मे यह मधु घोला ?

कौध गई नस-नस मे कोई मान-भरी बिजली अलबेली,
फूल-फूल मे, कली-कली से कौन अमल-अरुणाभा खेली ?

परिणय हुआ, 'छबीली' आई बनकर अब झासी की रानी,
जीवन की पुस्तक पर लिखने चला नियन्ता नई-कहानी,

तपःपूत-प्रतिभा ने पाया नया-धरातल मुक्त-डोलने,
रभस-वेग से कर्म-तुला पर नरता की चित्-शक्ति तोलने,

मिली राजमाता जनता को, मोदमग्न फूली न समाई,
दीन-देश ने पाई जैसे स्वय इन्दिरा 'लक्ष्मीबाई',

श्रद्धा-पूरित हृदय चकित थे, मिली भाग्य से ऐसी रानी,
करते जय-जयकार रात-दिन थक न सकी जनता की वाणी,

सहज-स्नेह, व्यवहार-कुशलता, प्रखर-बुद्धि मन मोह गई थी,
हृदय-हृदय को मिली कि जैसे शक्ति नई, चेतना नई थी,

यहाँ उसी तप मे इसके दिन धीरे-धीरे बीत रहे थे,
नये-नये अनुभव अन्तर की शेप-शून्यता जीन रहे थे,

और एक दिन सहसा सुख की नई-लहर जीवन में आई,
प्राणों की उदास-कोमलता ने अब खुलकर ली अगड़ाई,

रजनीगधा की पुलकित-टहनी-सी झूमी कुसुमित-काया,
रानी मा बन गई, हृदय ने ममता का नव-सम्बल पाया,

नृप निहाल होगये, नई-आशा मे प्रजा हुई दीवानी,
सूख चला था धीरे-धीरे उन बहती आखों का पानी.

झासी के सूने-सिहासन पर सुषमा की सृष्टि हुई थी,
दग्ध-देश पर मानो मधु के मेघ-खण्ड की वृष्टि हुई थी,

किंतु नियता के निश्चित विधान का किसको भान हुआ है.
यही पराजित नर-बल, कुंठित यही मनुज का ज्ञान हुआ है,

क्रूर-काल के कुटिल-करों को इन अधरों को हँसी न भाई,
सरस-स्नेह के मधु-मुकुलो से मन की बगिया बसी न भाई,

भाग्य सजी-सँवरी जीवन-क्यारी में विष के बीज बो गया,
नन्दन निर्जन बना, डाल का फूल-फूल अंगार हो गया,

ममता का अवलब पुत्र डँस गई मृत्यु की भीषण-व्याली,
चिर-अतृप्त हो तृप्त न पाई, गई लील माधों की लाली,

यौवन के पहले प्रभात मे माथे का सिन्दूर धुल गया,
सुख के दो पल मिले, दाह का अविनश्वर-वरदान मिलगया,
समझा गई व्यथा जीवन का गूढ़-मर्म, दुर्गम-पथ जाना,
चचल-सुख चल. पीडा अविचल, जटिल सृष्टि का ताना-बाना,
यह तापसी करुण-रोदन अब गीत बनाना सीख चुकी है,
पीड़ा के युग से क्षण मन के मीत बनाना सीख चुकी है,

ध्वनि-विशिखो से बेध निशा की नीरवता की काया,
दूर गजर बज उठा, उदय का प्रथम-सँदेशा आया,
कब की अर्ध-निशा बीती है, पौ फटने की बेला,
बिखर गये तारे बुदबुद से, दो-पल तम का मेला,
पिघल नीर बन गये गगन के झिलमिल मोती-हीरे,
ओस नई आशा-सी झरती नभ से धीरे-धीरे,
शीतल हुआ समीर, तीर से खाकर जगी लताएे,
नीड हिले झोको मे, चहकी अलस विहग-बालाएे,
मन्द-मन्द कोलाहल गूँजा, चौक चकित-सी रानी,
देख रही तम-जाल धो रहा नई-प्रभा का पानी,
चेतन हुआ विकार-बद्ध-मन, रूप व्यथा का बदला,
सागर सौम्य हुआ, मन्थन से प्रज्ञा का मधु निकला,
एक नई-दृढता जीवन का सम्बल बनकर आई,
नई-धूप सी निखर गई है पीड़ा की परछाईं,
पास आ गई उन्मन-सखियाँ अलसित-लोचन खोले,
निशिभर गुनती रही वेदना, अधर न कणभर डोले,

ये श्रद्धा के मोल विकी है, इनका सब कुछ रानी,
जल से विलग मीन ये जीवित रह न सकेगी मानी,
दुख-सुख अपना बना, प्राण का भेद-कोष रीता है,
एकाकार हुई, दूरी को ममता ने जीता है,
समवेदना बनी है कितनी बार मचल जल-धारा,
कितनी बार अधीर-हृदय का घोर व्यथा से हारा,
उनका हर उच्छ्वास इन्हें था एक अश्रु लोचन का,
उनका आँसू एक, इन्हे अनथक-प्रवाह सावन का,
देख रही पीडित-मुख रानी, अधर मन्द मुसकाते,
इंगित से जैसे जीवन का गूढ-मर्म समझाते,
रह न सकी,मन पुलक पसीजा,मधुर-मधुर हँस बोली,
श्रुतियाँ डोली, ठिठक रह गई सुन विहगों की टोली,

"स्वाभाविक हैं अश्रु, कि नर-साधना इन्हे पीना है,
और अश्रु क्या ! अब तो पीकर गरल हमें जीना है,
देख रही हो इन चरणो को कैसा पंथ मिला है,
कठिन कर्म-शूलों से बोझिल, लक्ष्य अनत मिला है,
नर-जीवन में कुछ अमूल्य क्षण ऐसे भी आते हैं,
जो मानव को पक-पूर्ण-पथ चलना सिखलाते हैं,
प्रणयासक्त-हृदय का मादक-स्वप्न बिखर जाता है,
अग्नि-परीक्षा का जीवन मे एक समय आता है,
बाधाओ के कीट बुना करते है सम्मुख जाले,
किंतु काटकर पार निकल जाते है साहस-वाले,

खुले-खड्ग की धार धीर कर्तव्य जान चलते हैं
विश्व-कर्म के अनल-जाल मे निर्विषाद जलते है,
कायर सिधु-तीर पर बैठे शीप धुना करते है
सघर्षो से विलग व्यथा के वर्म बुना करते है,
मेधावी धर शीष हथेली पर जूझा करते है,
तृषा-विकल-काली का खप्पर लोहू से भरते है,
विपदाओ का इस जीवन मे कोई पार नही है,
कौन शीष है ऐसा जिस पर तम का भार नही है ?
परिवर्तन के क्रूर-नियम जग का शासन करते है,
हँसी छीनकर पीड़ा से मन की झोली भरते है,
ऊषा का स्यदन तमिस्त्र की मजिल तक जाता है,
जीवन-मरण, मरण-जीवन का अविनश्वर नाता है,
किंतु नही झुकता है पौरुष कभी भाग्य के आगे,
कौन दुधारा, काट सके जो नर-निश्चय के धागे ?
मर-मिटने की एक साध थी, एक लगन लासानी,
हम मनुष्य पी गये कि निर्भय महा-प्रलय का पानी.
काल-कूट बन गया अधर को छूकर मधु को धारा,
हमने किसी व्याधि के सम्मुख आँचल नही पसारा.
मैं मनु-सुता, काल के आगे शीष न झुकने दूँगी,
बलिदानों की यह परम्परा सहज न रुकने दूगी.
एक लगन है, एक भूख है, मैं जिस पर जीवित हूँ,
पलभर घिरी निराशा लेकिन अब मै अप्रतिहत हूँ,
मन की निर्बलता के बैरी को अब जीत चुकी हूँ,
मैं अपनी अपार-पीड़ा से बिलकुल रीत चुकी हूँ,

अब न एक भी अश्रु दाह का लोचन से छलकेगा,
दृढ-प्रतिज्ञ हूँ, सदा कर्म के लिये हृदय ललकेगा,
एक पंथ होगा अब मेरा, एक महा-व्रत होगा,
मै आश्वस्त, व्याधियो का भूधर-विशाल नत होगा।
तन-मन से मै अब स्वतन्त्रता का श्रृंगार करूगी,
दग्ध-देश मे नई-चेतना का सचार करूगी,
मिटकर भी पीडित-स्वदेश का जन-बल मुझे जगाना,
युग-यौवन को स्वाभिमान का मूल्य मुझे समझाना,
'झाँसी पावन कर्मक्षेत्र है देश लक्ष्य है मेरा,
मचली मुक्ति-किरण को बाँधे, ऐसा कौन अँधेरा ?
शक्ति संगठित होगी, झाँसी वज्रो का घर होगी
वीर-प्रसू बुन्देलखण्ड की धरा न ऊसर होगी,

फिर दमका दम-दम मुख-मण्डल, फिर आई अरुणाई,
ताप-तप्त आदित्य उधर जल उठे, इधर तरुणाई,
सखियाँ नया-प्रकाश-पुज प्राणों मे भर मुसकाई,
लगा व्योम की दुर्गा भू पर रानी बन कर आई,
"आप साथ है जिसके, उसको किस विपदा का भय है ?
तिनका बिजली बने, न इसमे कणभर भी सशय है,
ये कर छू ले जिसे, वही मिट्टी बन जाये सोना,
जिसको ममता मिले, उसे कैसे आँसू ? क्या रोना ?
आप मिली अवलंब, सदा सौभाग्यवती है झाँसी,
बनी रहेंगी सकल सिद्धियाँ इन चरणों की दासी"।

बीत रहे दिन धीरे-धीरे, राते उजली-काली,
निश्चित गति से बढी चली जा रही सृष्टि-मतवाली,
नित्य प्रबुद्ध होरही क्रमश· अब विश्व खल-झाँसी,
नित्य नया उत्साह पा रहे थके-थके पुरवासी,
रानी-सा पथ-दर्शक, जनता बल-सचित करती है,
नई-चेतना मे अन्तर की रिक्त-सधि भरती है,
और तप रही रानी तप मे नित तापस-बाला-सी
प्रखर-साधना की आँधी मे निखर उठी ज्वाला-सी,
उधर विदेशी कुटिल-व्याल से बेठे फन फैलाये,
क्षुधा-विकल-विष-दन्त न जाने कब किसको डस जाये,
ये साम्राज्यवाद के पोषक, कूट-नीति के हामी,
छल-प्रपच का लिये दुधारा, पशु-पथ के अनुगामी,
सत्य, सुधर्म न्याय के द्वारे व्यापारी बन आये
हसने भी मानवता के नाते सब 'नाज़' उठाये,
यह भारत है जहाँ साँप का दूध पिलाया जाता,
जहाँ प्राण देकर भी मानव-धर्म निभाया जाता,
आज भाग्य-निर्णायक बनकर बैठे अतिथि हमारे,
तौलेंगी पीढ़ियाँ धर्म के, नय के मान तुम्हारे,
मनुज, मनुज का दास बनेगा ? यह कैसी नादानी,
कर पायेगी शक्ति सत्य पर कब तक यह मनमानी ?

शस्त्रों से मनुष्य के मन पर विजय पाई न जाती,
यह चिनगारी कभी क्षार से नही दबाई जाती,
फ़ूट न जाये असंतोप की अग्नि तोष के तल-से ?
विप्लव का विप कही न निकले मथित-सिंधु के जल-से ?

चार-मास बीते, अनपेक्षित वह दुर्दिन भी आया,
'मेजर एलिस' 'डलहौजी' का कूट-सँदेशा लाया,
भीति सत्य हो गई, क्षुधा का ग्रास बन गई 'झाँसी',
अनय-चक्र घूमा, अधर्म का दास बन गई 'झाँसी',
गोद अस्वीकृत हुई, दुर्ग पर ध्वजा विदेशी फहरी,
जनता के भावुक-अन्तर पर लगी चोट यह गहरी,
'एलिस' शासक बना', 'गॉर्डन' सहयोगी बन आया,
अग्रेजी-सत्ता ने खुलकर अपना चक्र चलाया,
रानी मौन पी रही सब कुछ जान बूझकर ऐसे !
ज्वालमुखी फ़टने से पहले प्रशान्त हो जैसे,

"बिखरी हुई शक्ति के बल पर कैसे ललकारूँगी ?
अर्थ अधीर-युद्ध का होगा निश्चय ही हारूँगी,
समझ रही हूं अभी द्रोह का समय नही आया है,
यह प्रहार बस परिकर कसने का इंगित लाया है.
यही विवेकशीलता होगी, करूँ संगठन बल-का.
उत्तर देना होगा मुझको इस पशुता, इस छल का",

दुर्ग छोडकर गीले-लोचन लिये महल मे आई,
निश्चय की ज्वाला प्राणो मे दिन-दूनी अधिकाई,

और चली-चल विकल-कल्पने ! गुनती जा गुण-गाथा,
यह विस्मय बिन गाये सगिनि ! मुझसे रहा न जाता,
बीत रहे दिन धीरे-धीरे, राते उजली-काली,
निश्चित-गति से बढी चली जा रही सृष्टि-मतवाली,
जन-बल को दे रही प्रेरणा इधर तापसी-रानी.
खौल रहा बुन्देलखण्ड के खुले-खड्ग का पानी,
ऊपर मौन, परोक्ष चल रही है सारी तैयारी,
समय आगया, जान गये है झाँसी के नर-नारी
उधर शृंखला-बद्ध देश में दमन-चक्र चलता है,
शोषण और अनय की भट्टी मे घर-घर जलता है,
सुलग उठी है हृदय-हृदय मे विप्लव की चिनगारी,
जनता ने तन्द्रा की तन से जड़-कँचुली उतारी.
जितना दमन बढा प्राणों की पीर सजग है उतनी,
आगत-कर्तव्यों की अब तस्वीर सजग है उतनी,
बढा और साम्राज्यवाद का यह भूचाल-भयंकर,
धीरे-धीरे छलक रही है भरी पाप की गागर,
सत्ता का प्रमाद 'मेरठ' फिर 'सातारा' पर टूटा,
'नागपूर', 'लखनऊ', आगरा' कौन भूख से छूटा,
धन लूटा, स्वतन्त्रता लूटी, धर्म न बाकी छोडा,
किंतु यही तुमने अपने हाथो अपना घट फोडा,

हुआ घोप'सब'राम-कृष्ण' को तज 'मसीह' को मानो
'रामायण-गीता' में क्या है? श्रेष्ठ 'बाईबिल' जानो,
विश्व-धर्म है एक, एक बस, ईसाई बन जाओ,
धो डालो त्रिपुड माथे का, इन चरणो मे आओ,"
यह भारत है, एक धर्म ही जहाँ प्राण है, प्रण है,
मोक्ष साधना है जीवन की, मात्र भोग रज-कण है,
यहाँ श्रेष्ठ-धन 'राम-कृष्ण' हैं, 'गीता-गगाजल' है,
मिट जाना है सरल, धर्म तज देना नही सरल है,
दिन-दूनी प्रज्वलित हो रही घृणा दग्ध-जन-मन मे,
क्रोध कसमसा रहा, क्राति हो रही जवान जलन मे,
लक्ष्मीबाई, तॉत्या-टोपे, नाना से सेनानी,
अविश्रात सगठित कर रहे महा-देश की वाणी,
गॉव-गॉव से, नगर-नगर से एक यही ध्वनि आती,
चलो कि पीड़ित-मॉ की कातर-वाणी हमे बुलाती,
शीष कफन बॉधे बैठी है घर-घर मे तरुणाई,
धर्म-युद्ध की बलिदानी-बेला आई, अब आई,
अकस्मात ही हो जाता है, जो जितना है होना,
होनी ऐसी फसल कि जिसके बीज न पडते बोना,
कारण भी मिल गया, एक बस छोटी सी चिनगारी-
महानाश की बन जाती है कभी-कभी लाचारी,
चरबी मिले कारतूसों को कौन दॉत से खोले ?
धर्म-परायण भारतीय-वीरों के आसन डोले,
सेना हुई विरुद्ध, प्राण जाएें पर धर्म न जाये,
कौन बली है गाय-सुअर की चरबी हमें खिलाये ?

उधर दमन ही एक अस्त्र है, हुए दण्ड के भागी,
घी मिल गया, सुलगती-ज्वाला और व्यग्र हो जागी
बनी भूमिका मुक्ति-युद्ध की, सेना भड़क उठी है,
धीरज की निर्बला-अर्गला असमय तडक उठी है,
'रोटी' और 'कमल' विप्लव के पूत-प्रतीक बनाये,
गाँव-गाँव में क्राति-पर्व के नियत-सँदेशे आये,
किंतु समय से पहले सहसा जन-ज्वालागिर फूटा,
'मेरठ' का विक्षुब्ध सैन्य-दल मचल शत्रु पर टूटा,
धाँय-धाँय बन्दूकें गरजी, कौंध उठी तलवारें,
होने लगी तृप्त लोहू से खर-बर्छियाँ-कटारें,
हिंसा ने हिंसा का भीषण अनल-कुंड धधकाया,
पवन-वेग से 'मेरठ' का प्रारम्भ देश पर छाया,
नगर-नगर में उच्छ्ल बह उठी शोणित की सरिताएं,
एक साध प्रतिशोध, लालसा, मारे या मर जाएं,
यह साम्राज्यवाद को जागे जन-बल का उत्तर है,
एक-दो नही, इस प्रयाण में निकल पड़ा घर-घर है·

धधक उठा सम्पूर्ण देश है, किंतु मौन है झाँसी,
किये नियंत्रण बैठी रानी, संयम की अभिलाषी,
"कही विवेक-हीनता बल को शाप नही बन जाये,
यह प्रमाद की आँधी धधकी ज्वाला बुझा न जाये'
चार-जून को झासी भीषण रक्त-पात में डूबी,
देख रही पर यह बर्बरता रानी ऊबी-ऊबी,
"ये पागल हो रहे, क्रोध मे बोध जला बैठे है,
पूर्व और पश्चिम का नैतिक-भेद भुला बैठे है,
निरपराध-नारी पर टूटेगी तलवार हमारी ?
शैशव की छाती चीरेगी कुपित-कटार हमारी ?
रोको, रोको हाथ, देश का गौरव लजा रहे हो,
इस अधर्म पर तुम स्वराज्य का मन्दिर सजा रहे हो'
लेकिन कौन सुने, उत्पीडित-जनता है दीवानी,
इधर बह रहा रक्त नीर-सा, उधर विकल है रानी,
सोच रही है अधिक मौन रहने का समय नही है,
मिला अपेक्षित-योग, और सहने का समय नही है,
अधिकृत किया दुर्ग, झाँसी पर फिर भगवा लहराया
भग्न-स्वप्न को आज रूप देने का अवसर आया,
हुआ विचार-विमर्ष, सचिव, सामंत, सभासद् आये,
रानी दृढ-प्रतिज्ञ, "झाँसी पर आँच न आने पाये,

कृष्ण अमर है, राम अमर है, गीता अमर हमारी,
मनु के बेटो ! करलो अग्नि-परीक्षा की तैयारी,
रामायण-कुरान के गौरव की रक्षा करना है,
माँ की सूनी-मांग लहू की लाली से भरना है,
हिन्दू आओ, मुसलमान आओ, आओ बुन्देलो,
फिर न मिलेगी, मरकर यह अनमोल अमरता लेलो,"
सिह-गर्जना करते सौ-सौ कठ मचल कर बोले
मेघ-खण्ड हो जैसे कोई कुपित कड़कता डोले,
"बाई साहब ! आख उठाकर देखे कोई झाँसी,
हम देखे रण-चण्डी है कितने लोहू की प्यासी,
अन्तिम शोणित-बिन्दु यज्ञ का पूत-हविष्य बनेगा,
हाथ डालकर देखे बैरी, निश्चिन शीश धुनेगा,
बच्चा-बच्चा इस नगरी का बलि के साज सजाये,
जिसको प्राण न प्यारे अपने इस धरती तक आये,
आकर तौले इस धरती का तेज, खड्ग का पानी,
आये, झांसी सजी खड़ी है करने को अगवानी,"

हुई सुसज्जित सेना रण के भीषण साज सजाये,
रानी सजग, अंग कोई भी निबल न रहने पाये,
अस्त्र-शस्त्र चढ़ गए शाण पर, तरुण हुई समशीरे,
नई-नई तोपों का बोझा साध खड़ी प्राचीरे,
व्यूह बने, बारूद ढल रही, गोले भारी-भारी,
कैसी त्वरा, यंत्र से अवरित जुटे हुए नर-नारी,

पुरुषो से दो-डग आगे है झाँसी की ललनाएँ,
बनी बिजलियाँ दौड रही है वे अबोध-अबलाएँ,
आँख खोलकर देख कल्पने ! यह भारत की नारी,
बलिदानों की दृढ-परम्परा, सहनशील, अवतारी,
मां की सुनी गुहार कि इसको जीवन खेल हुआ है,
आग और पानी का कैसा अद्भुत-मेल हुआ है,
वह जिसकी लज्जा घूघट से अभी बाहर न आई,
वह जिसकी कोमलता देखी, छुई-मुई शरमाई,
वह जो अबतक प्रणय-सेज का सुख-श्रृंगार रही है,
वह जो अबतक वीणा की मादक-झनकार रही है,
वह जो घर की दीवारो मे कभी न बाहर झाँकी,
वह जो जीवित रही आज तक बन पिजरे का पाखी,
मेघावली लजाने वाले कुतल नाग बने है,
कोकिल जैसे कठ मचलकर भैरव-राग बने हैं,
जिन नयनों मे सुरा बरसती, कालकूट भरता है,
वह बंकिम-भ्रू-भग खड्ग सा आज भीति भरता है,
कल की अबला, आज शौर्य की ही प्रतिमूर्ति बनी है,
तुमसा धन है जहां देश वह निर्धन नही, धनी है,
धीर-वीर भारत यह इसकी मिट्टी बलिदानी है,
उर में पौरूप-ज्वार नयन में ममता का पानी है,
रानी का नेतृत्व तृणों ने वज्रों का बल पाया,
क्रुध-सिंधु फुफकार उठा है, मथन का दिन आया,
झाँसी अपनी हुई, अभी पर चिता टली नही है,
किसे एक अबला के कर की सत्ता खली नही है ?

इधर हो रही मुक्ति-युद्ध की नित्य नई तैयारी,
घर के लोलुप शत्रु उधर हो गए सजग, बलिहारी,
बीस-सहस्त्र सैन्य-दल लेकर 'नेत्थेखाँ' चढ़ आया,
क्षुद्र-स्वार्थ, सत्ता का प्यासा कणभर नही लजाया,
पशुता ने भी मानवता का मोल कभी पहचाना ?
हाय ! हमारी लोलुपता ने अपना धर्म न जाना,
जिस पर बैठे काट रहे है हम अपनी ही डाली,
मन का सत्य सुषुप्त, देह को सजग भूख मतवाली,
और न्याय ने कभी न देखा अपना और पराया,
नही सत्य ने यहाँ असत के आगे शीप झुकाया,
उधर हुआ आघात इधर उत्तर देती है झाँसी,
खुलकर लहू बहा, लेकिन धरती प्यासी की प्यासी,
गरज रही'घन-गरज' मृत्यु-सी अनथक अनल उगलती,
कड़क रही है कुपित'कड़क-बिजली'अरि का दल दलती,
दुर्ग बाढ़ पर बाढ दे रहा, बना प्रलय हर गोला,
किससे टकराने आया है ? शत्रु न समझा भोला,
पुरुष-वेष, कर लिये दुधारा दौड़ रही है रानी,
करती है उत्साह-वर्धना मानौ स्वय भवानी,
सह न सकी लावा को बरखा भीत शत्रु की सेना,
बनी हुई रानी की झाँसी अरि को लौह-चबैना,
बीत गए पल, घड़ी, ढला दिल, तोपे थकी नही है
प्रलयंकर गोलो की धारा क्षण भर रुकी नही है,
उखड़ गए हैं पाँव, शत्रु-दल युद्ध-भूमि से भागा,
आप मृत्यु के मुख में आया यह दुर्बुद्ध, अभागा,

झाँसी विजयी हुई, उल्लसित नगरी के नर-नारी
वृद्ध नाचते, तरुण उछलते, शिशु भरते किलकारी,

और चली चल विकल कल्पने ! गुनती जा गुन-गाथा,
यह विस्मय बिन गाये संगिनि ! मुझसे रहा न जाता,

उधर ब्रिटिश-सत्ता को भारत हुआ आंख का तिनका,
इसकी कसक न झेली जाती, बोझ बना हर क्षण का,
अब जो शिथिल रहे तो सपना सपना रह जाएगा,
विश्वासो का नीड क्रुद्ध-आंधी मे ढह जाएगा",
'सेनापति-ह्यू रोज़' कुचलने चला देश की वाणी,
झासी इधर सजी बैठी है करने को अगवानी,
'मदनपूर' जीता, जीता 'बानपुर', 'चँदेरी' आया,
लाशो पर साम्राज्यवाद ने अपना ताज सजाया,
दमन, ध्वस, शोषण की छलना झासी तक भी आई,
अरि की सेना नगर घेरकर घनी-घटा सी छाई,
भेजे गए गुप्तचर, तौली गई विरोधी-क्षमता,
दूरदर्शिता देख रही झासी मे अपनी समता,
समझ रहा 'ह्यू रोज' पहाड़ो मे टकराना होगा,
"हमको बल से अधिक नीति का पथ अपनाना होगा',
इधर खुदी खाईयाँ, प्रखर-तोपो की सजी कतारे,
ध्वस्त कर सके दुर्ग-नगर को गोलों की बौछारें,

कूटनीति ने उधर लोभ का विषम-जाल फैलाया,
पद-लोलुपता के प्रमाद ने बढकर शीष झुकाया,
वैभव के, सत्ता के प्यासे दौडे कर फैलाये,
नरता के कलंक गौरव को गिरवी रखने आये,
हाय ! फूट ने मेरे घर का कितना बल खोया है,
एक शाप के लिये देश यह युगो-युगो रोया है,
यही फूट विकराल महाभारत का रण बन आई,
अरे सपूतो ! लेकिन अब भी तुमको लाज न आई,
घर के भेदी अपने हाथों घर को जला रहे हैं,
जीवन की अक्षय-पूँजी मिट्टी मे मिला रहे हैं,
भेद मिले सब, शत्रु-व्यूह अब प्रतिपल अधिक घना है,
झासी के मिस छल का, बल का भीषण-जाल बना है,
भेजा गया दूत "स्वीकारो आधीनता हमारी"
(सात सिधु के पार बन गये तुम कैसे अधिकारी ?)
"दुर्ग छोडकर हमतक आये, करे समर्पण रानी,
अर्थ द्रोह का होगा झांसी हो जाये वीरानी"
उधर जुटी है शक्ति-सगठन मे निशि-वासर रानी,
एक साध रक्षा स्वदेश की, एक लगन दीवानी,
मिला 'रोज' का कुटिल सँदेशा, 'दुर्ग छोड़कर आओ,
स्वीकारो दासता हमारी, उन्नत-भाल झुकाओ',
मन ही मन मुसकाई मानी ! सुनी चुनौती बल की,
निर्विकार भगिमा,भीति की छाया तनिक न झलकी,
और अचल संकल्प हृदय का, मिटी लक्ष्य की दूरी,
"मैं जीवित हूँ तबतक तेरी साध न होगी पूरी,

मिट जाऊँगी, मगर न दूंगी ऐसे अपनी झांसी,
'रोज' ! तौलकर देख, बनेगी झांसी तुझको फासी",
उत्तर भेजा गया, सुदृढ हो गया नगर का घेरा,
परिकर कसे खड़ी है झांसी, उछल रहा मन मेरा,

लिख रही झांसी नया-इतिहास,
मुग्ध है धरती, मगन आकाश ।

षष्ठम सर्ग

भय की छाया-सी रात ढली,
नूतन-उमग-सा प्रात हुआ,
जग की जडता-से क्रुद्ध शुद्ध
चेतन आलोक-प्रपात हुआ,
हो उठा मथित आकाश-सिधु,
जगमग ऊषा की लाली-से,
लोहू के निर्झर झरते या
छल-छल नीलम की प्याली से ?
उद्‌बुद्ध हो गई है धरती,
अम्बर अंगडाई लेता है,
उदयाचल से कोई अमूर्त
सन्देश बोध का देता है,
निद्रा सपना हो रही यहाँ
कब से दीवानी-झाँसी में,
गाती हैं ताने खुले-खड्‌ग
रण-गान जवानी झाँसी में,

बिजलिया रगो मे दौड़ रही,
लोहू मे आज उबाल नया,
आने वाला है झासी मे
कोई भीषण-भूचाल नया,
समर के सारे साज सजे,
चढ रहे शारण पर अस्त्र-शस्त्र,
तलवार, कटार, धनुष, भाले,
बिखरे हैं आयुध यत्र-तत्र,
अनगिनती तोपे सजी,
युद्ध की अब पूरी तैयारी है,
कसमसा रहे नर-वीर, जूझ
पडने की बाकी बारी है,
विस्मय-व्याकुल मै सोच रहा
ऐसा उत्साह कही देखा ?
जीवन पर है आसक्ति नहीं,
मिलती न कही भय की रेखा,
श्रद्धा बनकर मन में पैठी,
इनकी उमंग, इनकी दृढ़ता,
वह देश दास रह सकता है
जिसका धन हो ऐसी ममता ?
कल्पने ! पिपासा यह कैसी
जिस पर समाज है दीवाना ?
स्वाधीन चाहता है जीना,
स्वाधीन चाहता मिट जाना,

प्राणो को लिये हथेली पर
तैयार नगर के नर-नारी,
दुर्गा-सी, दस्यु-दलन को ही
जैसे यह रानी अवतारी,
हो गया युद्ध आरम्भ, शत्रु की–
तोपे लावा उगल उठी,
रानी की रोषभरी झासी,
प्रत्युत्तर देने मचल उठी,
आ-आ कर गिरने लगे नगर
के आस-पास भीषण-गोले,
गर्जन से डोला आसमान,
धरती डोली, दिग्गज डोले,
चिनगिया उछलने लगी, धूम्र का–
एक नया-आकाश बना,
गोलों की ऐसी झड़ी लगी,
बरसे मेघों का जाल घना,
रानी का इंगित मिला, प्रलय के–
गर्जन-सी गरजी झांसी,
सुन महा-घोष मुद-मग्न हुई–
रण-चण्डी शोणित की प्यासी,
कर कोप 'कड़क-बिजली' कड़की,
गोलों पर गोले छूट चले,
गोरी-सेना पर महाकाल के–
दूत मरण से टूट चले,

'घन-गरज,' 'भवानी-शकर' के
आघात लगे अरि पर होने,
लाशे छितराने लगी, लहू की–
धार लगी धरती धोने,
उडते है अवयव खण्ड-खण्ड,
वह शीष उडा, धड गिरा वही,
ऐसा विष-वमन हुआ गढ-से
जिसका संभव प्रतिकार नही,
है ध्वस्त व्यूह पर व्यूह,
तोपखाने बिखरे, बिखरी सेना,
दे रहा बाढ़ पर बाढ़ दुर्ग,
हो रहा कठिन उत्तर देना,
'ह्यूरोज' समझने लगा, आज
पड़ गया प्रलय से पाला है,
आसान नही है विजय, बनी
झांसी प्रलयकर-ज्वाला है,
रानी के गोलंदाज वीर
जूही, काशी, मोतीबाई,
जितना विकराल हुआ सगर,
उतनी उमग सौ-बल खाई,
नरवीर 'गौस' का लक्ष्य-बेध–
अरि की सेना का काल हुआ,
झांसी का प्रत्याघात दंभ के–
लिये ध्वंस का जाल हुआ,

रण-विज्ञ 'रोज' सा सेनापति,
दुख ने, चिंता ने घेर लिया,
छा गई निराशा की बदली,
विश्वासों ने मुख फेर लिया,
दिन भर अविराम चली तोपे,
गोलो की झड़िया लगी रही
सूरज की किरणो से ज्वलत–
अनगिन फुलझड़िया जगी रही,
गर्जन से कांपा किया गगन,
धरती शोणित मे पगी रही,
धीरज डोला दिग्वधुओं का,
भयभीत देखती ठगी रही,
नभचर किलोल भूले, वेपथुमित,
त्रस्त नीड़ मे लुके रहे,
दिनकर तक चलना छोड़, व्योम–
के पथ पर कितना रुके रहे,
दिन ढला, लहू की लाली-सी–
लालिमा लिये संध्या आई,
सौ-सौ ज्वालामुखियों की यह–
गर्जना न लेकिन थक पाई,
वैसे ही गोले फूट रहे–
अरि-दल की धूल उड़ाते-से,
स्वाधीन-युद्ध की कीर्ति-लता,
ऊपर दो-हाथ चढाते-से,

वीरांगना लक्ष्मीबाई

ढल गई साँझ, दिनकर डूबे,
आगई मचल रजनी-काली,
लेकिन झुकने का नाम नही–
–लेती है झाँसी-मतवाली,
'ह्यू रोज' बनाता नये व्यूह,
पल में यह क्षार बना देती,
गोलो की धार, प्रपातो की–
चंचल जल-धार बना देती,
तोपो के मुख से निकल–
अनल-आवृत्त अँधेरा बेध रहे,
मानौ यह सौ-सौ धूमकेतु–
फटकर तम का तन छेद रहे,
टकटकी लगाकर देख रहे–
–यह रक्त-पात नभ के तारे,
कानो पर हाथ दिये जैसे–
ये बधिर हो चले बेचारे,
कल्पने ! कौन वह तेज-पुज, ?
किरणे बिखराता आता है,
जिस ओर शिथिलता दिखे, वही
–चेतना नई भर जाता है,
अम्बर का चाँद बहुत फीका,
इसके प्रकाश का पार नही,
जिस माटी को छूले पग-रज,
हो वहाँ कभी पतझार नही,

मैं देख रहा श्रद्धा-विभोर,
री ! यह झाँसी की रानी है,
भारत की तरुण-तपस्या की–
सम्मुख साकार कहानी है,
कर रही युद्ध का संचालन,
दे रही प्रेरणा जन-बल को,
जिस ओर गई, उस ओर मिला–
कुछ और वेग दावानल को,
आँधी बन गये जवान, बनी–
बिजली झाँसी की हर नारी,
'ह्यू रोज' बुझाओगे कैसे !
इस मुक्ति-यज्ञ की चिनगारी,
रानी-सा निस्पृह–सचालक,
नर-वीर मुक्ति के मतवाले,
है कौन बली जो चुटकी में–
झाँसी का मान मसल डाले ?
लगता है बच्चा-बच्चा जब–
नगरी का बलि हो जाएगा,
तब कहीं शत्रु माता-सी-इस–
धरती पर पग धर पाएगा,

———

ढली रात, आया प्रभात पर विहग न बोले,
झाँसी अबतक उगल रही है भीषण–गोले,
वही गर्जना, महानाश की वैसी ज्वाला,
रण-चण्डी की तृषा अधिक पल-पल विकराला,
वही वर्तुलाकार अग्नि–पुँजों की धारा,
बरस रहा है अनल-कूप का पिघला-पारा.
दोनों पक्ष सचेत, वीर हत होते जाते,
शीघ्र नये सैनिक अभाव भरते, भिड़ जाते,
हाहाकार, कराह, चीख, रोदन सिसकारी,
मिलकर वातावरण बना भीषण, भयकारी,
दूर कहीं भूखा श्रगाल-दल बोल उठा है,
ऊबे कानों मे कर्कशता घोल उठा है,
शत्रु सरलता से न जीत पाएगा झाँसो,
बनी 'रोज' को विजय मात्र सपना-आकाशो,
हाय, किन्तु हम अपने ही घर में विभक्त हैं'
शक्ति-कोष होकर भी हम कितने अशक्त हैं ?
'पीरअली'–'दूल्हाजू' से घर-द्रोही जागे,
नश्वर-वैभव, नश्वर-पद के मोही जागे,
अब स्वतंत्रता बेच मिलेगी इनको चांदी,
मूल्य मुक्ति का तुम क्या जानो अरे प्रमादी ?

कूट 'रोज' को यह महान-अवलब मिल गया,
पशुता का भी वक्ष क्लीवता देख हिल गया,
इसी शाप से सदा बली-भारत हारा है,
हमें धर्म से कही अधिक वैभव प्यारा है,
नये व्यूह बन गये, युद्ध मे त्वरा आ गई,
गोलों की बरखा झाँसी पर प्रलय ढा गई,
लेकिन बने मोम के है क्या ये दीवाने ?
मिटना सरल, न लेकिन पीछे हटना जाने,

सहसा दूर गर्जना देने लगी सुनाई,
झाँसी की रक्षा को किसकी सेना आई,
अरुण-ध्वजाएँ कीर्ति-प्रतीकों-सी लहराई,
रणतूलों के तुमुल-घोष दे रहे सुनाई,
वीर-सहस्र वीर ले ताँत्या-टोपे आया,
सुनकर सुख-संवाद कौन फूला न समाया ?
मिला नया-उत्साह, आस के अंकुर फूटे,
उधर शत्रु पर महा-प्रलय-घन मानो टूटे,
'रोज' निराशा में डूबा, उलझा, अकुलाया,
यह मेरा दुर्भाग्य कहाँ से टोपे आया ?
झाँसी जीत सकूँगा, आज मिट गई आशा,
मरना होगा मुझे यही प्यासा का प्यासा,
लेकिन अब अन्तिम-प्रयत्न करना ही होगा,
बाधाओं को सहज शीष धरना ही होगा,

कितना कठिन हुआ है रण-सागर तर लेना" ?
कुशल 'रोज' ने दो भागों मे बाँटी सेना,
विश्वासी-सैनिक, विशाल-तोपो का दल है,
शौर्य नही, इसका सगी कौशल है, छल है,
दोनों ओर घेर 'ताँत्या' को व्यूह बनाया,
नये ढग से आज युद्ध का साज सजाया,
बडी-बडी तोपों की लगीं कतारें आगे,
सौ-सौ ज्वालामुखियो के फिर गर्जन जागे,
गोलों की छाया में सैनिक बढते जाते,
पागल-से दलते लाशों पर चढते जाते,
लाल हो गई तीक्ष्ण-वेतवा की जल-धारा,
लोथों से भर गई धरा पट गया किनारा,
हुई रुद्र-हुँकार, भिड़े सैनिक मतवाले,
तृषा-विकल तलवारें, उछले भूखे भाले,
हुआ भयानक युद्ध, धमक से धरती काँपी,
रण-चण्डी ने आज भूख की सीमा नापी,
गूँज रहे 'हर महादेव' 'हुर्रा' के नारे,
हूल-हूल जाते मचले विष-बुझे दुधारे,
छिन्न-भिन्न हो गई, घिरी ताँत्या की सेना,
जमकर लडा असंभव लेकिन जय पा लेना,
हारा 'टोपे', आशा फिर वन गई निराशा,
गिरते-गिरते पलट गया बैरी का पाँसा.

झाँसी पर अब घने व्यथा के बादल छाये,
वे नर-बली दिखाई देते शीष झुकाये,
एक धैर्य की मूर्ति शेष है केवल रानी,
जीवित रहते हार नही सीखी पाषाणी,
यह अब भी झाँसी देने तैयार नही है,
"हमें कर्म पर है, फल पर अधिकार नही है,
सोचो कही पेशवा की यह कुमुक न आती,
तो क्या मुक्ति-शत्रु के चरणो मे झुक जाती ?
अन्तिम रक्त बिंदु तक हमको लड़ना होगा,
हर विपदा पर निर्भय होकर चढना होगा,
होकर मर्त्य, मौत का भय ? यह कैसी छलना,
अंधकार की छाती पर हम सबको जलना,
हर बाधा का कालकूट हँसकर पीना है,
मिट जाना है या मनुष्य बनकर जीना है,
शीष झुकाओ, नही, उठाओ, परिकर कसलो,
असि-विष-दंत खोल फुफकारो, बैरी डस लो,
आज शपथ लो तुम धरती की व्यथा हरोगे,
दग्ध-देश की छाती का हर घाव भरोगे,
मैं निश्चय कर चुकी अन्त तक लड़ना होगा,
मुट्ठीभर क्या, एक बचे तो भिड़ना होगा,
स्वाधीनता जिसे प्यारी है आगे आये,
जीवन प्यारा जिसे लौट अपने घर जाये".
गूजी 'हर-हर महादेव' की सम्यक-वाणी,
"हमें प्राण से अधिक देश प्यारा है रानी,

अब दुर्बलता नही. हृदय मे अक्षय-ज्वाला,
पूर्ण करेंगे हम अपूर्ण मुण्डों की माला,
माँ की ग्रीवा नये साज मे आज सजेगी,
भेरी जैसी बजी न अबतक आज बजेगी.
भरी मोह की प्याली अब बिलकुल रीती है,
देखे धरती कितना लहू और पीती है ?
हम जीवित हैं, आप नहीं चिंतित हों रानी
देखेगा बैरी बुन्देलखण्ड का पानी",
मिली चेतना नई, रोष भर जागी तोपें,
जैसे सौ-सौ शपाऐं धरती पर कोपें.
पुरुष कसमसा उठे, तेग ले दौड़ी नारी,
झाँसी करती है अब साक़ा की तैयारी
वृद्ध तरुण हो गये, बनी तरुणाई आँधी
कौन शक्ति है जिसने उन्मद-आँधी बाँधी.
आज कडक-बिजली के तेवर क्रूर-काल से,
गोले कुशल-अहेरी के दुर्भेद्य-जाल से:
जो आ फँसा उसे मिल गई मौत की कारा,
उधर घनगरज' देती है धारा पर धारा,
बरस रहे घनघोर शोर कर जैसे ओले,
सावन की झडियो को मात दे रहे गोले
सहसा एक ओर गढ का परकोटा टूटा,
लेकिन धीरज तनिक नहीं झाँसी का छूटा,
कन्नी चली, सना गारा, दीवार बन गई,
झाँसी बैरी को वैसा ही भार बन गई,

दोनों पक्ष सचेत घात-प्रतिघात हो रहे,
दोनों दल धीरे-धीरे जन-शक्ति खो रहे,
दिन हो, काली निशा, ध्वस का चरण न डोला,
प्रलयकर ने प्रलय-नेत्र हो जैसे खोला,
आग-धुआँ-लपटों का ताण्डव थका नही है,
रण का स्यन्दन क्षणभर को भी रुका नही है,
सोलह दिन तक डटी रही दीवानो-झाँसी,
मिट जाएगी पर न रहेगी बनकर दासी,
वही गर्जना, महानाश की वैसी ज्वाला,
रण-चण्डी की तृषा और पल-पल विकराला,
वही वर्तुलाकार अग्नि-पुंजो की धारा,
बरस रहा है अनल-कूप का पिघला-पारा,
रे दुर्भाग्य ! मगर तू सचमुच बड़ा बली है,
कौन साधना तेरे हाथों नही छली है ?
मानवता का पथ कि जो शोणित से धोये,
तूने सदा उसीके पथ मे काँटे बोये,
व्यूह तोड़कर कुछ गोरे सैनिक घुस आये,
'जय-शंकर' हुँकार उठे केहरि के जाये,
टूटा सागरसिंह लिये मुट्ठीभर सेना,
कठिन हुआ दुश्मन को आगे पग रख लेना,
बिछे धूल से धरती पर क्षणभर में घाती,
लोहू बहा, बहें जैसे नाले बरसाती,
लड़ते-लड़ते गया स्वर्ग 'सागर' बलिदानी,
इस नर ने नर-गौरव की महिमा पहिचानी,
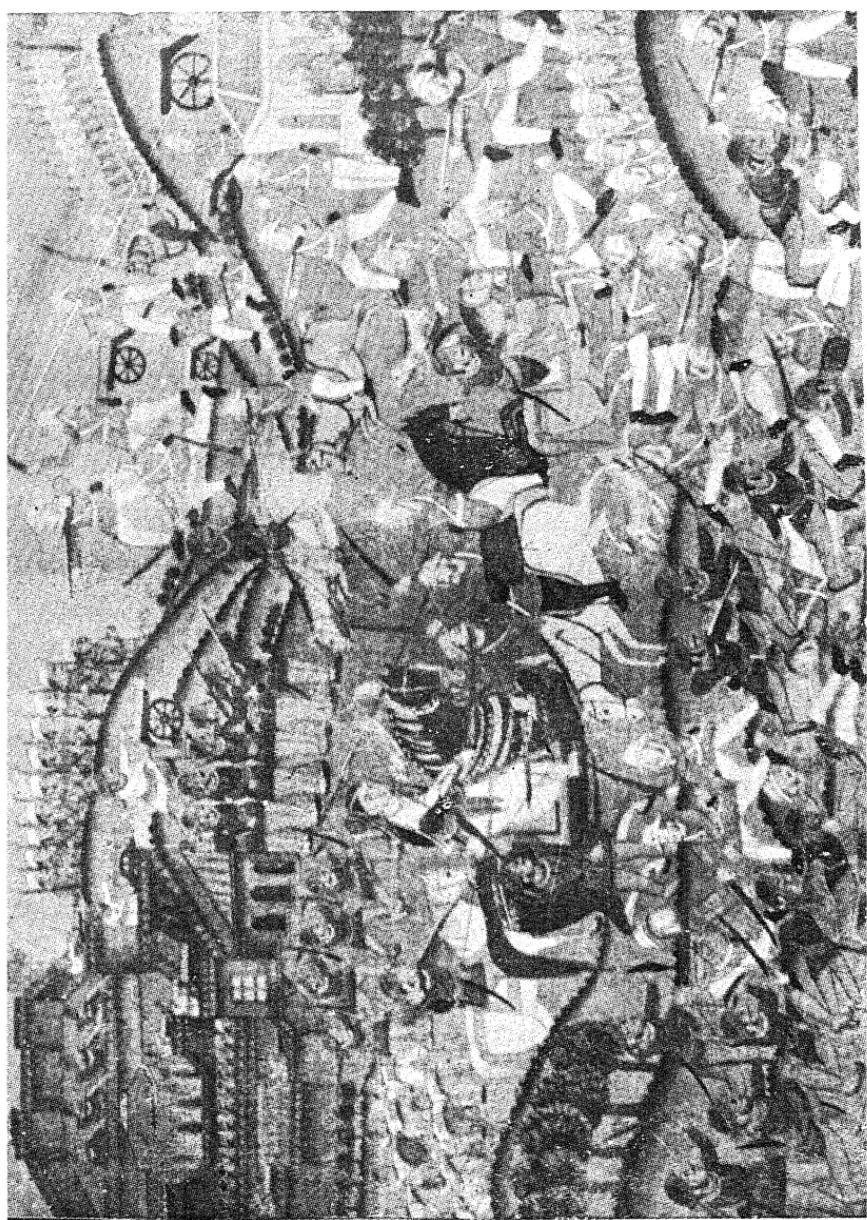
माना माटी का नश्वर-घट रीत गया है,
लेकिन रण-बाँकुरा मरण को जीत गया है,

घनी-घटा-सी बढ़ी आ रही गोरी-सेना,
मुक्ति-दैन्य-सी चढी आ रही गोरी-सेना,
झाँसी पर हो रही भयकर गोला-बारी,
हत हो रहे असख्य निरपराधी नर-नारी,
दभ सत्य से, बल से जब मुँह की खाता है,
तब विक्षिप्त हुआ करता है, झुँझलाता है,
यही क्रोध विकराल बना झाँसी पर टूटा,
न्याय, धर्म का काल बना झाँसी पर टूटा,
पाप शीष चढ़ बोला, ज्ञान खड़ा मुँह बाये,
पहुँचा वहाँ मनुष्य जहाँ पशुता झुक जाये,
रण-तटस्थ जनता पर यह तोपो की ज्वाला,
तुमने वीरों का ललाट काला कर डाला,
लपटों के दुर्भेद्य-जाल में प्रजा जल रही,
नन्हें-शिशुओ पर खूनी-संगीन चल रही,
तुमने नैतिकता से इतना नाता तोड़ा,
हाय! शील गृह-लक्ष्मी का बेदाग़ न छोड़ा,
ध्वस, लूट, हत्या, शोषण का पार नहीं है,
लेकिन यह झाँसी की नैतिक हार नही है,
हार गये तुम, विजयी है रानी की झाँसी,
ऊर्ध्व-मुखी, नर-गौरव की आशी, अविनाशी,

आज नही कल इसे पीढ़ियाँ नमन करेगीं,
इसकी गाथा से उर मे चेतना भरेगी,
और तुम्हे आक्राता कह जग याद करेगा,
इतिहासो पर यह कलक सदियो उभरेगा,

देख नगर की दशा विकल है 'लक्ष्मीबाई',
घू-घू हृदय जला स्नेहिल-आँखे भर आई,
"मै जीवित हूँ, यह नगरी स्मशान हो गई,
प्राणों से प्यारी झाँसी वीरान हो गई,
मुख पर झलकी है विषाद की गहरी छाया,
अरी कल्पने ! तेरा भी मानस भर आया !

उधर छू रहे गोरे बर्बरता की सीमा,
जगभर की नृशंसता, दानवता की सीमा,
ऐसी जाति धरा पर जन्मी ? कहाँ पले हो ?
तुम सचमुच क्लीवों मे भी अपवाद मिले हो,
इतिहासो पर मिल न सकेगी ऐसी रेखा,
देख कल्पने ! यह भी देख, न अबतक देखा,
जली सभ्यता, सस्कृति, तप-सचय जलता है,
मनुज-ज्ञान का कोष पुस्तकालय जलता है,
वेद जल रहे, जले उपनिषद, जलती गीता,
आज विश्व का बोध-कोष है जैसे रीता,

जड़ता पर चेतनता की जय क्षार हो रही,
झुका नाश का शीष, मृत्यु अनमनी हो रही,
मै लिखता हूं, कृत्य तुम्हारा अमर रहेगा,
मै भी देखू, तुमको कौन मनुष्य कहेगा ?
देख सिसकियाँ भर-भरकर रोई है रानी,
मुक्ति-तिलक-सा मिला धरित्री को यह पानी,
ये आँसू इस धरती की हरियाली होंगे,
भारत के उन्नत-ललाट की लाली होंगे,
कोई सिंधु की ज्यो मर्यादा छोड चला है,
क्रुद्ध कगारे वहा, किनारे तोड चला है,
धीरज की भी एक नियत सीमा होती है,
ढह जाती है जहाँ व्यथा भीमा होती है,
ये आसू गोलों की बरखा में न बहे थे,
कितने दुस्सह-दाह हृदय ने मौन सहे थे,
पथ-विचलित कर सकी न कोई बाधा मनको,
इसने वज्र बनाया है अपने जीवन को,
लेकिन यही रहस्य विश्व का समझ न पाया,
पाहन की छाती पर भी अकुर उग आया,
कुलिश-कठोर-श्रृंग के उर से निर्झर मचले,
मरुथल में भी कही-कही सोते बह निकले,
दोष नहीं, गुण है यह मानव-मन की ममता,
यही भव्यता है जीवन की, यही पूर्णता,
इसका हृदय न अपनी पीड़ा की कारा है,
अश्रु-माल यह विश्व-वेदना की धारा है,

प्राण पराजित है इसके, यह बात नही हैं,
कुम्हलाया संकल्पो का जलजात नही है,
दृढ़ता वही, वही निश्चय की अनबुझ-बाती,
जली जारही तम की भीषणता दहलाती,
एकत्रित कर बची हुई झाँसी की सेना.
हुकारी "रणधीरो ! शीष न झुकने देना,
आज तुम्हारी अग्नि-परीक्षा का दिन आया,
कितने श्रम से हमने मुक्ति-प्रदीप जलाया,
बुझने दोगे ? देश अँधेरा हो जाएगा,
मिट्टी का गौरव निर्जन मे खो जाएगा,
नरता के अभिमान ! उठो ! तलवार उठाओ,
धरतीवालो ! आज गगन का शीष झुकाओ,
देखे शत्रु आज भारत के तप की ज्वाला,
विषपायी कैसे पीते है हँसकर प्याला.
आज युद्ध का बस अन्तिम-निर्णय होना है,
हमे कर्म के महा-सिंधु में लय होना है",

संध्या-बेला रक्त-रंग हो रही प्रतीची,
रण-उन्मद बुन्देलो ने तलवारे खींचीं,
महानाश को निकली घर से आज भवानी,
काँप रही है कोप-कुपित प्रलयंकर रानी,
धूमकेतु-सी उतर दुर्ग से टूट पड़ी है,
सेना, प्रलय-पूछ से ज्वाला छूट पड़ी है,

तिनको-सा तम-तोम जलाती बिखर गई है,
कितना हव्य मिला है, वेदी सँवर गई है,
रक्त-नदी मे ऐसी बाढ प्रथम आई है,
खप्पर पूरित हुआ, कालिका मुसकाई है,
कर्ण-बधिर-गर्जना, क्रुद्ध वाणी वीरों की,
तलवारों की लपक, सनसनाहट तीरों की,
बन्दूकों की धॉय-धॉय, आहत-चीत्कारे,
मारो-काटो की अधीर निर्मम-हुंकारे,
रानी का रण आज देखते ही बनता है,
कैसे गिरती-गाज, देखते ही बनता है,
दाबे अश्व-रास दाँतो में, लिये दुधारे,
गणना थकी, गिने क्या, कितने शीष उतारे ?
किस कौशल मे दोनों कर तलवार चलाते,
पुतली फिरती नही, शीष धड से उड जाते,
जिधर गई बस लगता है भूचाल आगया
जिसने शीष उठाया देखा काल आगया,
पवन-वेग से अश्व हीसकर बढ जाता है,
इंगित मिलते-मिलते ऊपर चढ जाता है,
शत्रु-पक्ष मे एक यही दे रहा सुनाई,
भागो-भागो, बचो-बचो, वह रानी आई,
कैसा भीषण-ध्वंस, ध्वंस का पार नही है,
यह जीवित झाँसी देने तैयार नही है,
लोथों पर लोथें अपार गिरती जाती है,
मुक्ति-यज्ञ की रिक्त-संधि भरती जाती है,

हाय ! किंतु झाँसी की सेना मुट्ठीभर है,
और उधर उमडा आता सैनिक-सागर है,
बहुसंख्यक हत हुए, न लेकिन साहस टूटा,
गिने-चुने है शेष न लेकिन धीरज छूटा,
एक-एक पग भूमि शत्रु तब ले पाता है,
सो-सौ शीष धरा का मूल्य चुका जाता है,

रात घनी हो गई युद्ध से लौटी रानी,
भव्य-भगिमा वही, प्रभा जानी पहचानी,

काँप नही लेखनी ! दूर है अभी किनारा,
बहती चल कल्पने ! बहे भावो की धारा,
अंधकार मे धीन-धरा डूबी समस्त है,
झाँसी का सौभाग्य-सूर्य हो गया अस्त है,

लेकिन कही न भर लाना तू इन आंखों मे पानी,
पूर्ण-चन्द्र-सी प्रभा दे रही अभी मानिनी-रानी,
झाँसी ध्वस्त हुई तो क्या है ? इसका गौरव जीवित,
हृदय-हृदय भारत का होगा इसकी अमिट निशानी ।

सप्तम-सर्ग —

टूट रही उल्काये नभ से, धरती घूम रही है,
ओढ़े अन्धकार का आँचल यामा झूम रही है,
स्याही के सागर सा अम्बर घनी-कालिमा वाला,
आज सो गया किसी गुहा में जाकर भीत-उजाला,
फीका-चांद, बुझा-सा दीपक, ज्योति-चिन्ह से तारे,
देख रहा धुँधले, मटमैले, किसी व्यथा के मारे,
नीरव है आकाश धरा पर सन्नाटा-सा छाया,
विश्व, किसी शव को हो जैसे तम ने कफन उड़ाया,
मरघट-सी भीषणता धारे ध्वस्त खडी है झांसी,
कितना अर्घ्य दिया पर धरती अभी रुधिर की प्यासी,
पांच-सहस्त्र नगर की जनता नय की व्यथा वनी है,
इसकी बलि जीवन के पथ की पावन-कथा वनी है,
ये मिटकर भी मिटे नही है, बुझकर कर दीप जले हैं,
रक्त-ज्योति से ये धरती का आगन लीप चले हैं,
लोथो के अम्बार लगे है लाल लहू की धारा,
ऐसी धारा, मिले न जिसका खोजे कही किनारा,
गढ से दारुण-दशा नगर की देख रही है रानी,
सुलग रहा घर-घर झांसी का, लपटों की मनमानी,

आह,कराह, चीख, सिसकारी, रोदन की ध्वनि आती,
धधक रही आक्रांत-मनुजता, जलती कवि की छाती,
मेरे लोचन गीले, लेकिन रानी के दृग सूखे,
इसके प्राण न भावुकता के, क्रूर-कर्म के भूखे,
कुँचित भाल, विचार-व्यग्र मन, घनी दृगो मे लाली,
काँप रहे भुज-मूल कि जैसे थर-थर काँपे डाली,
"मै झाँसी छोड़ूगी, ऐसे हार नही मानूगी,
जब तक जीवित हूँ सगर को भार नही मानूगी,
आज, आज ही मुझे कालपी निश्चत जाना होगा,
एक बार फिर रण का भीषण साज सजाना होगा,
तात्या और पेशवा की सेना तैयार खड़ी है,
निश्चय सफल बना लेने की यह अनुकूल घडी है,
घनी अधेरी रात, आज तो तारे भी ओझल है,
और न हो तो मेरी रक्षा को ये खड्ग सबल है,
फल की क्यो आसक्ति हृदय में ? कर्म किये जाऊँ मै,
सौ-सौ बाधाओं मे निर्भय युद्ध-गान गाऊँ मै,
प्राणो में उत्साह, अधर पर मस्ती भरे तराने,
'जननी जनम दियो है हमको जई दिना के लाने',
खुले खड्ग लेकर हाथों में, पुत्र पीठ पर बाधे,
यह धरती की अनुपम गरिमा, नयन गगन पर साधे,
गिने-चुने बलिदानी सैनिक, देश-प्रेम की ज्वाला,
झांसी का यह दीप चला है करने जगत उजाला,
वेगवान आँधी-सी गढ़ से कूदी मचल भवानी,
चीर शत्रु सेना का जाला चली कापली रानी,

सधा अश्व प्रतिरूप पवन का, वीर-बुँदेले साथी,
इनको टोके कौन बली है ? किसकी चौड़ी छाती ?
कौन मात का जाया ? किसको अपने प्राण न प्यारे ?
इनको रोके, ये जो तन-मन-जीवन सब-कुछ हारे,
चम-चम चमक उड़ चले अनगिन पानीदार दुधारे,
बुला रही ज्वाला-रेखाये जैसे हाथ पसारे,
टप-टप-टप घोड़ो की टापे, गूँजी सकल-दिशाये,
उड़ी जा रही वीरा-रानी, सैनिक दाये-बाये,
कोलाहल सुन बैरी जागे गूँजी कातर-वाणी,
दौड़ो-दौड़ो, पकड़ो-पकड़ो, निकल चली है रानी,
लेकिन पागल ! इसे रोकना भी तो खेल नही है,
क्रुद्ध-नदी की बाढ कभी कूलो मे बंधी रही है ?
बजे खड्ग, टूटी तलवारे, मचले भीषण भाले—
भूखी-नौको पर कन्दुक मे गोरे-शीष उछाले,
अश्व-रास दाबे दांतों मे, लिए दुधारे मानी,
काट-काट कर पाट रही धरनी लोथों से रानी,
कौध रहे है अधकार में आयुध तड़िच्छटा-से
जीवन-की आभा डस लेते बढ़कर मरण-घटा-से,
धन्वा की टकार, धार तीरों की चादर ताने,
कैसी रोक-टोक ? हरते है दौड़ प्राण मनमाने,
गरज-गरज कर, उछल-उछलकर लडते वीर-बुँदेले,
ये रण-वृती आज लोहू से जीभर होली खेले,
युद्ध-ज्योति पर हँसकर जलते मुक्ति-शलभ दीवाने
'जननी जनम दियौ है हमको जई दिना के लाने',

कैसी लगन, गोलियाँ आगे बढकर झेले छाती,
कब से नयन लगे है मेरे, पीठ नही दिख पाती,
चम्पा-अश्व लिये रानी को रण में उछल रहा है,
चाब लगाम, हींसता चंचल, लाशे कुचल रहा है.
लक्ष्मी-सा स्वामी, पशुता ने देख शौर्य-पट ओढा,
दुश्मन को दहलाता निर्भय कूद रहा है घोडा,
शत्रु सामने दिखे, क्रुद्ध हुंकार काट लेता है,
रानी से पहले बढ कोई अग छाँट लेता है,
बिछा लोथ पर लोथ वाहिनी आगे बड़ती जाती,
अपरिमेय-बलि बलिवेदी पर क्रमश: चढती जाती,
चीर शत्रु की सेना रानी पीछे छोड चली है,
बाधाओं के श्रंग शौर्य के घन से तोड चली है,
उधर क्षितिज पर तामस धोती छाई सुघर ललाई,
पथ के कंटक-जाल छाँटती वीर कालपी आई,
ताँत्या टोपे, नाना साहब, रानी से सेनानी,
फिर तैयार खड़े हैं करने बैरी की अगवानी,

सूक्ष्म अध्ययन करती, शक्ति तौलती लक्ष्मीबाई,
ज्यों-ज्यों परिचित हुई हृदय ने घनी-वेदना पाई
विश्रंखल वाहिनी, शिथिल सचालन, हतप्रभ रानी,
कूल-कगारे तोड़ सकेगा बँधा हुआ यह पानी,
यह आमोद-प्रमोद, म्यान की कारा में तलवारें,
गीत-नृत्य, अनुराग-राग की ये रसभरी फुहारें.

झेल सकेंगे बली-शत्रु की भीषण-चोटे ऐसे ?
मुक्ति-सिन्धु की प्रलय-भँवरियाँ काट सकेंगे कैसे ?
लेकिन क्या हो, शेष आज तो सम्मुख यही सहारा,
इन्ही तृणो के बलपर पाना होगा मुझे किनारा",
पूर्ण सजग हो जुटी रात दिन बल-वर्धन में रानी,
ज्योति-पुंज-सी, किसी तिमिर से इसने हार न मानी,
नई-शक्ति देती सेना को, नई चेतना भरती,
बारूदी-प्राणों पर विस्फोटक-चिनगारी धरती,
जगा रही अन्तर-अन्तर में देश-प्रेम की ज्वाला,
पलक-झपकते इसने सोया जन-सागर मथ डाला,

आशा से पहले सेनापति 'रोज' 'कालपी' आया,
इसे संगठन का भी पूरा समय नही मिल पाया,
लेकिन यह दृढ़-व्रती जा भिडी ले मुठ्ठीभर सेना,
झुँझलाया 'ह्यू रोज' कठिन है इस पर जय पा लेना,
तोपे गरजीं, चलीं गोलियां, क्रूर-खड्ग टकराये,
गिरती लोथे उछल रुधिर की धारा चली बहाये,
युद्ध भूलकर ठगे देखते गोरे लड़ती रानी,
उड़ा रही धज्जियां शत्रु की यह दुर्गा-दीवानी,
बिजली कहीं, कही पर आंधी, क्रुद्ध धधकती ज्वाला,
कहीं दौडती लगती जलती अंगारों की माला,
जकड़े दोनों हाथ रुधिर के धोये चपल-दुधारे,
जिस पर टूटे, मुख से आह न निकली भय के मारे,

मचल रही है रक्त-कुड सी भरती धरती-प्यासी,
जूझ रही रण-केन्द्र-बिन्दु यह, तेज-पुज, अविनाशी,
जिधर गई हथियार छोड़कर गोरे सैनिक भागे,
शव गिरते जाते है, रानी बढ़ती जाती आगे,
'रोज' चकित, अभिभूत, लाज से रण में शीष झुकाये,
उस पाहन-सा, अंकुर जिसकी छाती पर लहराये,
"ऐसा वीर न देखा अबतक, ऐसा शौर्य न देखा
खीच रही तुम मेरे प्राणो पर श्रद्धा की रेखा.
काल पराजित जिसके आगे, तुम वह अमर-उजाला,
रोज ! एक नारी ने तेरा दर्प चूर कर डाला.
तू विजयी हो लेकिन वह भी इसकी हार न होगी,
यह देवी जीवित झुक जाने को तैयार न होगी,
धन्य हुआ मैं, ऐसा बैरी किसे कहा मिलता है ?
ऐसा दीप युगों में कोई धरती पर चलता है,
जिसकी ज्योति सदा संसृति को उद्भासित करती है,
देश-काल-सीमा से ऊपर अंधकार हरती है",
ग्रीष्म-काल, धरती जलती है, नील-गगन जलता है,
लू बनकर काया झुलसाता दग्ध-पवन चलता है,
मिली-जुली छलछला रही है स्वेद-रक्त की धारा,
प्रकृति चुनौती देने आई. शौर्य न लेकिन हारा,
फेन उगलते, अश्व हाँफते, किन्तु उड़े जाते हैं,
साँसें आँधी बनी, बुंदेले युद्ध-गान गाते है,
अंग थकन से चूर, दुधारे मगर नही रुकते हैं,
थकी कल्पना मेरी, लोचन जड़े-जड़े तकते हैं,

सहसा रण को पीठ दिखाकर 'नाना' का दल भागा,
एक बार फिर भारत का दुर्भाग्य नींद से जागा,
शिथिल-विलासी सेना, रानी जीती बाजी हारी,
कितना श्रम खा गई निगोड़ी नन्ही-भूल हमारी,
किसका दोष कहें ? हमने अपना कर्तव्य न जाना,
बस जीवित रहना जीवन का चरम-ध्येय अनुमाना,

खेल रही उन्मत्त विजयनी-सेना खुलकर होली,
सत्ता के विकराल-नाग ने अपनी जिव्हा खोली,
ध्वस्त कालपी, बूद-बूद शोणित पर होड़ लगी है,
हाय, कलुष-सग्रह की कैसी अनबुझ तृषा जगी है,
यह पैशाचिक-वृत्ति धरा का कबतक भार बनेगी ?
कब तक जडता और चेतना मे यह रार ठनेगी ?
मै आश्वस्त, एक दिन वह भी धरती पर आयेगा,
धर्म जयी होगा, अधर्म का नाम न रह जायेगा,

अविजित-रानी बाधाओ से अब भी हार न मानी,
वे होते है और कि जिनका साहस माँगे पानी,
वज्र-वक्ष, टकराकर लौटे लौह-दुधारे तीखे,
इसके अक्षत-चरण सदा शूलों पर चलना सीखे,
गोलों की बरखा मे इसकी दृढ़ता तनिक न डोली,
अग्नि-शिखा सी, इसने तम पर आभा की जय बोली,

इसने सग्रह किया वही सब, जो वरेण्य जीवन का,
बिरला मोती एक सृष्टि की चेतनता के घन का,

कौंध रहे शँपाओं के दल मन का मंथन करते,
घने विचारों के बादल बरसे उर-सागर भरते,
"एक दुर्ग के बिना विफल है सारे यत्न हमारे,
झाँसी गई, कालपी छूटी, बार-बार हम हारे,
किंतु पराजय हमे पथ से विमुख न कर पायेगी,
जितना बोझ बढ़ेगा, उतनी शक्ति निखर जायेगी.
एक राह, ग्वालियर-दुर्ग अब अधिकृत करना होगा,
इति-अथ किसी किनारे, अब तो पार उतरना होगा,
प्राणों मे उत्साह, अधर पर मस्ती भरे तराने,
"जननी जनम दियौ है हमकों जई दिना के लाने",
लिये शेष-वाहिनी तापसी वढी ग्वालियर आई,
आँधी-सी विद्रोही-सेना नगर घेरकर छाई,
भेजी गई दूत के हाथों आमंत्रण की पाती.
(चल कल्पने ! देख ले यह भी, पाहन करले छाती)

नृपति 'जयाजीराव सिंधिया' तक सन्देशा आया,
कोई वज्र कि जैसे दुर्बल-प्राणों से टकराया,
छू न गई है जिस अन्तर को देश-प्रेम की ज्वाला,
क्या विस्मय है अमृत छोड़कर चुने ज़हर का प्याला ?

'मोतीवाला' परख नही पाया अनबीधा-मोती,
काश ! सत्य की राह आज तुमने अपनाई होती,
मुक्ति-युद्ध को अधम ! योग मिल जाता कही तुम्हारा,
मै आश्वस्त कि ढहती निश्चित पराधीनता-कारा,
युगों-युगो पीढियाँ गर्व से तुमको शीष झुकाती,
और लेखनी तुम तक आते फ़ूली नही समाती,
किंतु तुम्हें सत्ता प्यारी है, नश्वर-कंचन प्यारा,
अपने हाथो वंश-कीर्ति-ध्वज तुमने आज उतारा.
देश पद-दलित जिनके हाथों. तुम उनके अनुगामी ?
स्वामी कौन तुम्हारा ? मूढ ! कि तुम हो अपने स्वामी,
झूठी स्वामिभक्ति पर तुमने कैसा पाप किया है.
माता-सी धरती को यह अच्छा प्रतिदान दिया है ?
दस-सहस्त्र सैनिक रानी का पथ रोकने आये,
देख तुम्हारा कृत्य सिंधिया लज्जा खडी लजाये,
प्रलय-वेग उधर बढी आती है वीरा-रानी,
बुझा सकेगा इस दावानल को अंजलि-भर पानी ?
"हमने सोचा था कि सिंधिया का सहयोग मिलेगा,
दीन-मुक्ति की नव-सज्जा का फिर सयोग मिलेगा,
लेकिन मानव-मन की दशा समझना सरल नहीं है.
कब किसने जाना यह धारा कैसे किधर बही है ?
स्वार्थ-बुद्धि श्रद्धा पर विजयी, क्यों न मिले तम-छाया ?
एक श्राप ने भारत का बल कितना क्षीण बनाया ?
हमें ग्वालियर-दुर्ग' शक्ति से अधिकृत करना होगा,
इति-अथ किसी किनारे, अब तो पार उतरना होगा.

प्राणों मे उत्साह, अधर पर मस्ती भरे तराने,
'जननी जनम दियो है हमको जई दिना के लाने',
लेकर रण-बॉकुरे गाज-सी मचली-टूट पड़ी है,
भयाक्रात सिधिया, शीष पर जैसे मौत खडी है,
उधर ग्वालियर की सेना ने नई-चेतना पाई,
रानी की श्रद्धा ने मन मे ज्वाला-सो धधकाई,
बहुसख्यक-सैनिक स्वतत्रता पर बलि होने आये.
मिटकर आज अमरता की छाया मे सोने आये,
घडी, दो-घडी वस तलवारे तलवारों से खेली,
बड़ी सरलता से विद्रोही-सेना ने जय लेली,
प्राण बचाकर भीरु-सिधिया सेना लेकर भागे,
रानी के पावन-पग छूकर भाग्य नगर के जागे,
सुदृढ़-दुर्ग पर अम्बर छूता मुक्ति-केतु लहराया,
रानी जीती, कौन हृदय जो फूला नही समाया ?

और चली चल विकल-कल्पने ! गुनती जा गुण-गाथा,
यह विस्मय बिन गाये सगिनि ! मुझसे रहा न जाता,

विजय मिली पर दुर्दिन अबतक बैठे डेरा डाले,
हाय कूल पर आकर डूबे, हम कितने प्रण-वाले ?
अवसर मिला, उपकरण पाये, साधे जगी नवेली.
'नाना' की प्रच्छन्न-विलास-वृत्तियाँ खुलकर खेली,
कोष लुटे, गणिकाऐ चहकी, भरा प्यालियाँ छलकी,
क्या राजा, क्या रक? किसी को चिता रही न कल को,

हुआ राज्य-अभिषेक, पेशवा बैठे बने प्रमादो,
केवल रानी देख रही है, चली आ रही आँधी,
"यह कुसमय आमोद ? हमारा कितना पतन हुआ है,
हम अपना प्रतिरोध, मुक्ति-पथ ज्यादा सघन हुआ है,
ये झँड़ियां, झालरे, बाजे, जगमग दीपक-माला,
कल का भोग, आज पर तेरा धन केवल मृग-छाला,
मधु चाहे जो उसे हलाहल पहले पीना होगा,
दो क्षण का सुख, यह जीना भी कोई जीना होगा ?
कितना श्रम, साधना, व्यर्थ है कितनी बड़ी तपस्या,
हम मदाध बन गए आज तो अपने लिये समस्या,
भाग्य ! आज मानने लगी हूँ मै अस्तित्व तुम्हारा,
पर मेरा सकल्प नहीं है अब भी तुमसे हारा,
'एक अकेली मै जीवित हूं तबतक यह रण होगा,
सांस-साँस न्यौछावर मेरी, पूरा यह प्रण होगा',

एक मास अनमोल सुरा में, राग-रंग में बीता,
मिला 'रोज़' को बल-वर्धन का यह अवसर मनचीता,
हम सोते ही रहे, कुशल-बैरी ने घेरा डाला,
धधक उठे वीरा के लोचन, फूटी भीषण-ज्वाला,
"एक अकेली मै जीवित हूं तबतक यह रण होगा,
साँस-साँस न्यौछावर मेरी, पूरा यह प्रण होगा,"
प्राणों में उत्साह, अधर पर मस्ती भरे तराने,
"जननी जनम दियौ है हमकों जई दिना के लाने"
गिनी-चुनी बलिदानी-सेना लिए शत्रु पर टूटी,
प्रथम प्रहार, 'रोज' की जैसे कर से नाड़ी छूटी,
उखड़े पाँव, खड्ग की भीषण-चोटें झेल न पाया,
ऐसा युद्ध न देखा, किसने सोता सिंह जगाया ?
'दीन-दीन', 'हर महादेव' की गूँज रही है वाणी,
वन को रौद मत्त-कुजर-सी बढ़ी जा रही रानी,
दमक रहा मुख-मण्डल रवि-किरणों का तेज लजाता,
ओज-प्रभा से मात्र भीरु-बैरी का उर दहलाता,
कौध रहा है दिवा-प्रभा में तलवारों का पानी,
मै अक्षम ! यह विक्रम कैसे तोल सकेगी वाणी ?
हुआ तुमुल-रण-नाद भयंकर ध्वंस मचल मुसकाया,
मूढ़ ! कराल-काल को तुमने अपने द्वार बुलाया,

झाँसी की रानी की समाधि-ग्वालियर (म. प्र.)
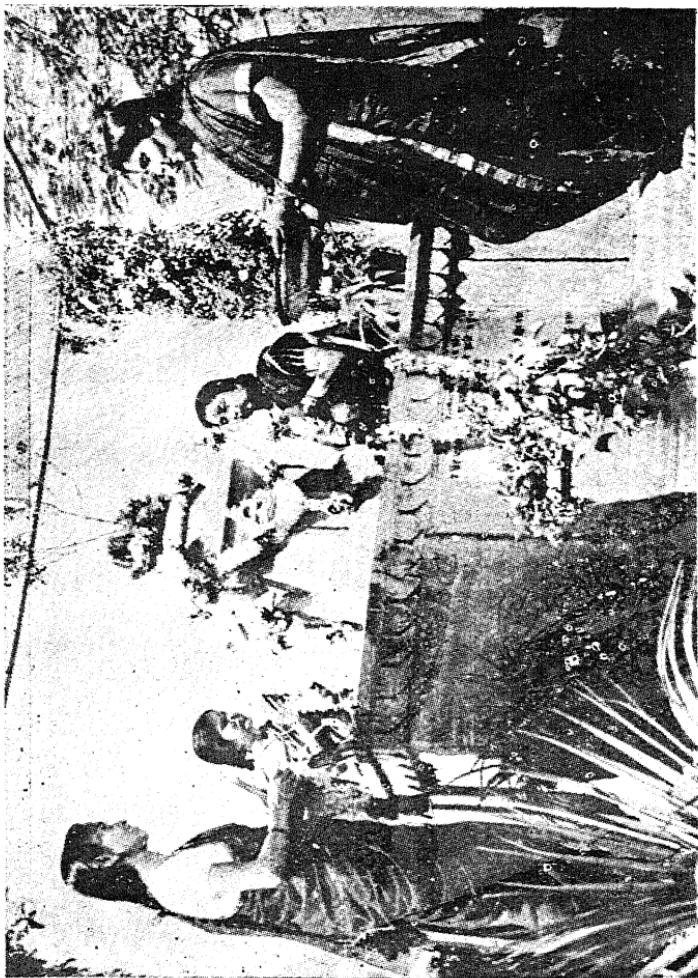
'जूही' इधर तोप के भीषण-गोले दाग़ रही है,
लक्ष्य अचूक, मार से गोरी-सेना भाग रही है,
उधर वीर-तॉत्या-टोपे के भूखे खुले-दुधारे,
जिधर टूटते, वेग उछलते ऊपर रुधिर-फुहारे,
रुण्ड-मुण्ड गिरते धरती पर, रक्त-धार बहती है,
कल-कल स्वर से प्रखर-शौर्य की गाथा-सी कहती है,

ढल चले हारे थके-रवि, ढल चला दिनमान,
दीखता होता नही पर युद्ध का अवसान,
खनखनाते खड्ग चलते, सनसनाते-तीर,
रिक्त-होने को विकल अब तक भरे तूणीर,
धॉय-धॉय धधक रही वैसी प्रचण्ड-दवाग,
गूजता अबतक वही उद्विग्न भैरव-राग,
चल रही तोपे कि जिनकी गर्जना भूचाल,
मुग्ध-रणचण्डी सजी-सॅवरी खड़ी विकराल,
खेलता है खेल भीषण और खुलकर नाश,
डाल जीवन पर भयानक मृत्यु का जड़-पाश,

हाय ! होनी का न लेकिन हो सका अनुमान,
काल की गति को नही कोई सका पहचान,
ढल गई सध्या, हँसी गहरी अँधेरी-रात,
झॉकते हैं स्याह-अम्बर से नखत-अवदात,
दे रहा वातावरण किस भीति का सकेत ?
कौन विपदाएँ तमिस्रा वन घिरी समवेत ?

दूर सूखे-ठूठ पर बैठे प्रमत्त-उलूक---
बोलते, करते हुए मेरा हृदय दो-टूँक,

युद्ध से लौट रानी शिविर को चली,
कल्पने ! देख, तम में प्रभा-सी खिली,
वीरता रूप धरकर चली जा रही,
प्राण में ओज भरती जली जा रही,
वीथियों में छिपे शत्रु-सैनिक बढ़े,
शौर्य को छोड़, अभिसंधियों पर चढ़े,
वेग से टूटकर वार करने चले,
भूधरों को मसल क्षार करने चले,
पर न सोचा कि यह वज्र का वक्ष है,
चोट पर चोट झेले, बड़ा दक्ष है,
सिंहनी-सी गरज, खड्ग खीचे हुए,
क्रुद्ध-भूचाल-सी, दाँत भीचे हुए,
सींचती रक्त से दग्ध सूखी-धरा,
देखना चाहती है इसे उर्वरा,
बाढ़-सी देह का पक धोती हुई,
चेतना के नये-बीज बोती हुई,
कंटकों की कुटिल-झाड़ियाँ छांटती,
भारती की बँधी बेड़ियाँ काटती,
बढ़ रही है दुधारा चलाती हुई,
दासता का कलेजा हिलाती हुई,

विघ्न-बाधा कहाँ है ? कि रोके इसे,
कौनसी आँधियाँ है कि टोके इसे ?
यह किसी आपदा से रुकेगी नही,
काल के सामने भी झुकेगी नही,
वार जिस पर पड़ा, बस वही तर गया,
किंतु प्रारब्ध कुछ और ही कर गया,
सामने काल-रेखा नदी आ गई,
क्या कहें और हम ? बस बदी आगई,
अश्व भयभीत हो हीसकर अड़ गया,
यत्न कितना किया, किंतु घोड़ा नया,
हाय ! चाहा बहुत, पर हिला ही नही,
त्याग का तेज इसको मिला ही नही,
वीरबाला घिरी, घात होने लगे,
व्रण बहे, रक्त से देह धोने लगे,
शीष पर एक तलवार आकर गिरी,
चोट सी चोट, फूटी रुधिर-निर्झरी,
एक प्रतिघात, घाती कटी-डाल से,
आ बिछे धूल में, जा मिले काल से,
मिट गए, किंतु चोटें कड़ी दे गये,
विश्व को वेदना की झड़ी दे गये,
रक्त-कितना बहा ! तन शिथिल होगया,
भाग्य सचमुच किये में सफल हो गया,
अश्व से भूमि पर रक्त-लथपथ गिरी,
पीर पल-पल अधिक हो रही है हरी,

आह मुख से न लेकिन निकल पा रही,
दाह को कंठ में ही पिये जा रही,
मूक धरती, घनी-रात सुनसान है,
लग रहा आज संसार वीरान है,
मूर्च्छना चेतना पर विजय पा रही,
स्वर्ग को जीतने की घड़ी आ रही,
लोचनों में धरा घूमती-सी लगी,
मृत्यु सटकर खड़ी झूमती-सी लगी,
आज यह भी कि जैसे हुई धन्य है,
जीव अबतक न ऐसा मिला अन्य है,
कुछ पलक-पट कँपे, कुछ अधर-पुट हिले,
स्वर बहा, बोल पावन-ऋचा से मिले,
"छू सकें देह मेरी न बैरी, सुनो!
अश्रु पौछो, न ऐसे खड़े सिर धुनो,
जा रही हूँ मगर याद इतना रहे,
मुक्ति का पूत-सपना न सपना रहे,
शूल दासत्व के छाँटना है तुम्हें,
देश की बेड़ियां काटना है तुम्हें",
स्वर थका, सांस जैसे तनिक बढ चली,
ज्योति बुझती हुई और भभकी, जली,
एक हिचकी, कि आंखें तुली रह गईं,
पुतलियां बस खुली की खुली रह गईं,

हाय ! आंसू नहीं है कि हम रो सकें,
काश ! तेरा दिया बोझ ही ढो सकें,
तुम गईं, दे गईं पर नया बल हमें,
चेतना का सुदृढ़ एक सम्बल हमें,
ओज इतना थके-प्राण में भर गई,
देवि ! संकल्प को वज्र-सा कर गई,
काल का भय, न भूचाल का भय हमें,
आज अपनी विजय मे न संशय हमें,
सत्य है, स्वप्न में भी झुकेंगे नहीं,
मुक्ति-पथ पर बढ़ेंगे, रुकेंगे नहीं,
डूबकर भी अगम-सिंधु तरना हमें,
रक्त से मुक्ति की माँग भरना हमें,

धू-धू करती जल उठी चिता,
लपटों के पुंज उड़े ऊपर,
तारे छाले-से लगते हैं,
झुलसा-झुलसा लगता अम्बर,
साकार-शौर्य, उत्सर्ग, शील,
कुन्दन-सा वह तन क्षार हुआ,
लेकिन आलोक नहीं मरता,
जगमग सारा संसार हुआ ।

———

स्वप्न का संसार भी कैसा अजब संसार,
सत्य को मिलता कि मनभाया जहां आकार,
जो विगत ओझल हुआ, वह दृश्य-सा साकार,
देख लेता मन सभी कुछ मुग्ध बारम्बार,
मुक्त धरती, मुक्त नभ, फैला मधुर-आलोक,
लग रही है सृष्टि मन को आज पूर्ण-अशोक,
मै अचल, निस्तब्ध बैठा देखता आकाश,
मै न एकाकी, कि एक समाधि मेरे पास,
ईंट-चूने की बनी निर्जीव यह चौकोर,
किंतु इस पर चेतना बलिहार आत्म-विभोर,
यह समाधि अपौरुषेय सुधर्म-कर्म-प्रतीक,
अनुकरण करती विजय जिसका बनी यह लीक,
शौर्य की, अमरत्व की अभिव्यंजना साकार,
शुद्ध-जीवन-तत्व की अभिव्यजना साकार,
एक नारी के अमर-बलिदान का यह चिन्ह,
असत् से सत् के सतत-सम्मान का यह चिन्ह,
मृत्यु पर जीवन-विजय का यह सनातन-घोष,
जो न होता रिक्त है, वह प्रेरणा का कोष,
ले रही यह अविस्मरणीय-गाथा साँस,
तरुण-लोहू ने लिखा पाषाण पर इतिहास,

मत्त-मुकुलों की मनोरम वीथियों के बीच,
देश-गौरव की सुरभि से वायु-मंडल सींच,
कर रही जन-धमनियों मे रक्त का संचार,
अनय को नय की चुनौती यह खड़ी साकार।

सोम धर दीप, फूल तारक, सजाए थाल,
मुग्ध-यामिनी है रोज आरती उतारती।
शीतल-फुहार-धार बरखा बहाती मंजु,
झूम-झूम घूम पग-कमल पखारती।
देती हैं परिक्रमा दिशाएँ अभिमान भरी,
मधुऋतु फूल-फल कानन सँवारती।
मन्दिर है, पुण्य-तीर्थराज महा-वन्दनीय,
वाणी के सुघर-पुष्प लाई आज भारती।

जिसकी प्रदीप्त-प्रतिभा का है पुजारी मन,
पावन समाधि यही रानी मरदानी की।
शौर्य की शिखा-सी दीप्त भव्य तेज-मंडल में,
प्राण-प्राण छपी-छाप जिसकी कहानी की।
मूर्त प्रतिरूप ही थी कुपित-कराली का या,
लाई अवतार छटा भू-पर भवानी की।
सूरज-सा तेज, सुधाकर-सा सनेह-शील,
आग और पानी का मिलाप मूर्ति रानी की।

नारी थी सुकोमला, परन्तु लगता है मुझे,
पौरुष का माप-दण्ड देह धर आया हो ।
तेज,तप,त्याग की महान-महिमा से मानो—
विधि ने ही भेज उसे भूतल सजाया हो ।
अंगना के रूप में अनूपमक्ह दिवंगना थी,
भारत का भव्य-भाग्य रानी बन आया हो ।
दासता के आतप में झुलसी धरित्री पर—
वीर, धीर, नीर भरे मेघ-दल-छाया हो ।

इतिः